श्री
श्रीचमत्कारचन्द्रिका
श्रीश्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

श्रीश्रीचमत्कार-चन्द्रिका

श्रीश्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर विरचित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्य केशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्री

श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

गौड़ीय वेदान्त प्रकाशन

प्रकाशक—

श्रीभक्ति वेदान्त माधव महाराज

द्वितीय संस्करण — १०,००० प्रतियाँ

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी तिरोभाव तिथि

श्रीचैतन्याब्द ५२२

१४ अक्टूबर, २००८

प्राप्ति स्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰प्र॰)
०५६५-२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३२७०

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११-२५५३३५६८

श्रीगिरिधारी गौड़ीयमठ
राधाकुण्ड रोड,
गोवर्धन (उ॰प्र॰)
०५६५-२८१५६६८

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन (उ॰प्र॰)
०५६५-२४४३१०१

प्रस्तावना

आज मुझे श्रीगौड़ीय वैष्णव आचार्य मुकुटमणि महामहोपाध्याय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा प्रणीत 'श्रीश्रीचमत्कारचन्द्रिका' नामक ग्रन्थका हिन्दी-संस्करण श्रद्धालु पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार आनन्दकी अनुभूति हो रही है। यह उनके द्वारा रचित एक अनुपम खण्ड काव्य है। इसकी भाषा गम्भीर, किन्तु सहज बोधगम्य है।

श्रीश्रीराधागोविन्दकी लीलाके अनुपम तथा प्रवीण चित्रकारने अपने परम मधुर स्वभाववशतः प्रेमभक्तिकी सुकोमल तूलिका (चित्रकारकी कूची) में महामोहन अमृतरसको मिलाकर इस ग्रन्थमें श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलके चार मनोज्ञ, अद्भुत तथा सुचारु मिलन कौतूहल चित्रोंको अङ्कितकर व्रजरसके लोलुप रसिक एवं भावुक पाठकों तथा साधकोंके समक्ष प्रस्तुत किया है। ये चारों कौतूहल चित्र रस-परिवेशन, शब्द-विन्यास-चातुर्य और भाव माधुर्यसे रसिकों और भावुकोंके चित्तको चमत्कृतकर उन्हें मुग्ध करनेवाले हैं। इसके अलावा ये चारों कौतूहल हास्यरससे भी परिपूर्ण हैं, जो पाठकों और साधकोंके चित्तको हास्य रसके आनन्दरूपी सागरमें निमग्न कर देते हैं। अलङ्कारिकोंका कहना है—"रसे सारः चमत्कारः"—रसका सार चमत्कार है अर्थात् यह चमत्कारचन्द्रिका रसोंका सार है। अतएव इस ग्रन्थके चारों कौतूहलोंमें रसोंका सार प्रदर्शित होनेके कारण इस ग्रन्थका नाम 'श्रीश्रीचमत्कारचन्द्रिका' सार्थक है।

"रम्यवस्तु समालोके लोलता स्यात् कौतूहलम्" अर्थात् मनोहर वस्तुके दर्शनमात्रसे ही लोलुपता या उत्कण्ठा पैदा होती है, उसे कौतूहल (उत्सुकता) कहते हैं—इस उक्तिका मर्म भी पाठकोंके हृदयमें स्वतः ही अनुभूत होगा। इस ग्रन्थमें कौतूहलोंके घटना-वैचित्र्य भी ऐसे चमत्कार पूर्ण हैं कि श्रीश्रीराधाकृष्णके मिलनमें जो चिर-विरोधीके रूपमें अधिक प्रसिद्ध हैं, वे ही दोनोंके महामिलनमें सहायक बने हैं।

प्रथम कौतूहलमें मञ्जूषिका मिलन है। द्वितीय कौतूहलमें अभिमन्युके वेषमें श्रीकृष्णका राधाजीसे मिलन है। तृतीय कौतूहलमें श्रीकृष्ण वैद्यवेषमें राधाजीसे मिलते हैं। चतुर्थ कौतूहलमें श्रीकृष्ण गायिका रमणीके वेषमें राधाजीसे मिलित हुए हैं। महाजन पदावलीमें भी इन लीलाओंका यथेष्ट आभास मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि हरिवासर अर्थात् एकादशीके रात्रि-जागरणके सम्पर्कमें चार-यामोंके लिए ये चार कौतूहल लिखे गये हैं। पूर्वकालमें भी वैष्णव लोग इस ग्रन्थका अनुशीलन और आस्वादनकर अनेक प्रकारके भावोंके साथ परस्पर रसोद्गार और स्व-अनुभूत अद्भुत चमत्कारिताका आदान-प्रदान करते हुए परम आनन्दित हुआ करते थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका जीवन-चरित्र

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर नदिया जिलेमें राढ़ीय श्रेणी विप्रकुलमें आविर्भूत हुए थे। ये हरिवल्लभके नामसे प्रसिद्ध थे। रामभद्र और रघुनाथ नामक इनके दो बड़े भाई थे। बाल्यकालमें इन्होंने देवग्राम नामक एक ग्राममें व्याकरण पाठ समाप्तकर मुर्शिदाबाद जिलेके शैयदाबाद नामक ग्राममें (गुरुगृहमें) भक्ति-शास्त्रोंका अध्ययन किया। इन्होंने बिन्दु, किरण और कणा—इन तीनों ग्रन्थोंकी रचना शैयदाबाद ग्राममें अध्ययन करते समय ही की थी। कुछ दिनों बाद ये गृहत्यागकर वृन्दावन चले आये। यहीं पर इन्होंने विभिन्न ग्रन्थोंकी रचनाएँ व टीकाएँ लिखीं।

श्रीमन् महाप्रभु और उनके अनुगत षड्गोस्वामियोंके अप्रकट होनेपर शुद्धभक्ति-धारा श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीश्यामानन्द—तीनों प्रभुओंके माध्यमसे प्रवाहित हो रही थी। श्रील नरोत्तम ठाकुरकी शिष्य परम्परामें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर चतुर्थ-पुरुष हैं। श्रीलनरोत्तम ठाकुर महाशयके शिष्यका नाम श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्ती महाशय था। ये मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत बालूचर गम्भिलामें रहते थे। इन्हें कोई पुत्र न था, केवलमात्र एक कन्या थी जिसका नाम विष्णुप्रिया था। श्रील नरोत्तम ठाकुरके एक वारेन्द्र श्रेणीके दूसरे शिष्य भी थे, जिनका नाम रामकृष्ण भट्टाचार्य था। इन

रामकृष्ण भट्टाचार्यके कनिष्ठ पुत्रका नाम कृष्णचरण था। इन कृष्णचरणको श्रीगङ्गानारायणने दत्तकपुत्रके रूपमें ग्रहण किया। श्रीकृष्णचरणके शिष्य राधारमण चक्रवर्ती थे और ये श्रीराधारमण ही श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके श्रीगुरुदेव हैं। रासपञ्चाध्यायकी सारार्थ-दर्शिनी टीकाके प्रारम्भमें इन्होंने ऐसा लिखा है—

श्रीरामकृष्णगङ्गाचरणान् नत्वा गुरुनुरुप्रेम्नः।
श्रीलनरोत्तमनाथ श्रीगौराङ्गप्रभुं नौमि॥

अर्थात् इस श्लोकमें श्रीरामसे उनके गुरुदेव श्रीराधारमण, कृष्णसे परमगुरुदेव श्रीकृष्णचरण, गङ्गाचरणसे परात्पर गुरुदेव श्रीगङ्गानारायण, नरोत्तमसे परमपरात्पर गुरुदेव श्रीनरोत्तम ठाकुर और 'नाथ' शब्दसे श्रील नरोत्तम ठाकुरके गुरुदेव श्रीलोकनाथ गोस्वामीको समझना चाहिये। इस प्रकार श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर श्रीमन् महाप्रभु तक अपनी गुरुपरम्पराको प्रणाम कर रहे हैं, ऐसा सूचित होता है।

श्रीनिवासाचार्यकी कन्याका नाम हेमलता ठाकुरानी था। ये परमविदूषी तथा परम-वैष्णवी थीं। इन्होंने अपने रूपकविराज नामक एक उदासीन शिष्यको गौड़ीय-समाजसे बहिष्कृत कर दिया था। तबसे वे रूपकविराज गौड़ीय-वैष्णव-समाजमें 'अतिबाड़ी' नामसे परिचित हुए। उन्होंने गौड़ीय-वैष्णवोंके सिद्धान्तके विरुद्ध अपना एक नया मत स्थापन किया कि केवलमात्र त्यागी व्यक्ति ही आचार्यका कार्य कर सकता है। गृहस्थ व्यक्ति भक्तिका आचार्य नहीं हो सकता। विधिमार्गका सम्पूर्ण रूपसे अनादरकर उच्छृंखलतापूर्ण रागमार्गका प्रचार करना ही इनका उद्देश्य था। श्रवण-कीर्त्तनका त्यागकर केवल स्मरणके द्वारा ही रागानुगाभक्ति सम्भव है—ऐसा इनका नवीन मत था।

सौभाग्यवशतः श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर उस समय वर्त्तमान थे। उन्होंने श्रीमद्भागवतके तृतीय-स्कन्धकी सारार्थदर्शिनी टीकामें इसका प्रतिवाद किया। आचार्यवंशमें नित्यानन्द प्रभुके पुत्र वीरभद्र प्रभुके शिष्यवंशमें तथा अद्वैताचार्यके त्यक्त पुत्रोंके वंशमें गृहस्थ होकर गोस्वामी उपाधि प्रदान और ग्रहण करना उचित नहीं

है—रूपकविराजके ऐसे विचारका श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने प्रतिवाद किया। उन्होंने प्रमाणित किया कि आचार्यवंशके योग्य अधस्तन गृहस्थ सन्तानोंके द्वारा भी आचार्यका कार्य करना असङ्गत नहीं है। परन्तु वंश-परम्परा क्रमसे धन और शिष्यके लोभसे आचार्यकुलमें उत्पन्न अयोग्य सन्तानोंके लिए अपने नामके साथ 'गोस्वामी' शब्दका प्रयोग शाश्वत-शास्त्र विरोधी और नितान्त अवैध कार्य है—ऐसा भी प्रमाणित किया। इसलिए उन्होंने (श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने) आचार्यका कार्य करनेपर भी अपने नामके साथ 'गोस्वामी' शब्दका प्रयोग कदापि नहीं किया। उन्होंने आधुनिक कालके विचारहीन अयोग्य आचार्य सन्तानोंको शिक्षा देनेके लिए ही ऐसा किया है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जिस समय अत्यन्त वृद्ध हो गये थे तथा अधिकांश समय वे अर्द्धबाह्य और अन्तर्दशामें स्थित होकर भजनमें विभोर रहते थे, उसी समय जयपुरमें श्रीगौड़ीय-वैष्णवों तथा स्वकीयावादी अन्यान्य वैष्णवोंमें एक विवाद छिड़ गया। उस समय द्वितीय जयसिंह जयपुरके नरेश थे। विरुद्ध पक्षवाले वैष्णवोंने द्वितीय जयसिंहको यह समझाया कि श्रीगोविन्ददेवके साथ श्रीमती राधिकाजीकी पूजा शास्त्र-सम्मत नहीं है। इसका कारण यह है कि श्रीमद्भागवत या विष्णुपुराणमें श्रीमती राधिकाके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं है। श्रीमती राधिका वैदिक विधियोंके अनुसार श्रीकृष्णकी विवाहित पत्नी नहीं हैं। दूसरी बात गौड़ीय-वैष्णव साम्प्रदायिक वैष्णव नहीं हैं। वैष्णव सम्प्रदाय चार ही हैं, जो अनादि कालसे चले आ रहे हैं। उनके नाम हैं—श्री-सम्प्रदाय, ब्रह्म-सम्प्रदाय, रुद्र-सम्प्रदाय और सनक-सम्प्रदाय। कलियुगमें इन सम्प्रदायोंके प्रधान आचार्य क्रमशः श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और श्रीनिम्बादित्य हैं। गौड़ीय-वैष्णव इन चारों सम्प्रदायोंसे बहिर्भूत हैं, अतः वे शुद्ध साम्प्रदायिक वैष्णव नहीं हैं। विशेषतः इस वैष्णव-सम्प्रदायका अपना कोई ब्रह्मसूत्रका भाष्य नहीं है, अतएव इसे परम्परागत वैष्णव सम्प्रदाय नहीं माना जा सकता है। उसी समय महाराज जयसिंहने श्रीवृन्दावनके प्रधान गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंको श्रील रूपगोस्वामीका अनुगत जानकर श्रीरामानुजीय वैष्णवोंके साथ विचार करनेके लिए आह्वान किया। अत्यन्त वृद्ध

तथा भजनानन्दमें विभोर रहनेके कारण श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने अपने छात्र गौड़ीय-वैष्णव-वेदान्ताचार्य, पण्डितकुलमुकुट महामहोपाध्याय श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण और अपने शिष्य श्रीकृष्णदेवको जयपुरमें विचार करनेके लिए भेजा।

जाति-गोस्वामीगण अपने मध्व-सम्प्रदायके आनुगत्यको भूल चुके थे। साथ ही उन्होंने वैष्णवोंके वेदान्त-सम्बन्धी विचारधाराका अनादरकर गौड़ीय-वैष्णवोंके लिए एक महान विपत्तिका आह्वान किया था। श्रील बलदेव विद्याभूषणने अकाट्य युक्तियों और सुदृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा यह प्रमाणित किया कि गौड़ीय सम्प्रदाय मध्वानुगत शुद्ध वैष्णव-सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायका नाम श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-वैष्णव-सम्प्रदाय है। हमारे पूर्वाचार्य श्रील जीवगोस्वामी, कविकर्णपूर आदिने इसे स्वीकार किया है। श्रीगौड़ीय-वैष्णवजन श्रीमद्भागवतको ही वेदान्तसूत्रका अकृत्रिम भाष्य मानते हैं। इसलिए गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायमें स्वतन्त्र रूपसे वेदान्तसूत्रके किसी भाष्यकी रचना नहीं की गयी है। विभिन्न पुराणोंमें श्रीमती राधिकाके नामका उल्लेख है, वे ह्लादिनीस्वरूपा, श्रीकृष्णकी नित्यप्रिया हैं। श्रीमद्भागवतके विभिन्न स्थलोंमें विशेषतः दसवें स्कन्धकी व्रजलीलाके वर्णन प्रसङ्गमें सर्वत्र ही श्रीमती राधिकाका अत्यन्त गूढ़ रूपसे उल्लेख है। सिद्धान्तविद्, रसिक और भावुक भक्त ही इस गूढ़ रहस्यको समझ सकते हैं। श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने उस विद्वत्सभामें प्रतिपक्षके सभी तर्कोंको खण्ड-विखण्डकर तथा सन्देहोंको दूरकर श्रीगौड़ीय-वैष्णवोंका मध्वानुगत्य प्रमणित किया। विपक्ष निरुत्तर हो गया, फिर भी उन्होंने श्रीगौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायका कोई वेदान्त भाष्य न होनेपर उन्हें शुद्ध पारम्परिक वैष्णव माननेसे अस्वीकार कर दिया। तब वहीं पर ही श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने ब्रह्मसूत्रके 'श्रीगोविन्द-भाष्य' नामक सुप्रसिद्ध गौड़ीय-भाष्यकी रचना की। इस प्रकारसे श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरमें पुनः श्रीश्रीराधागोविन्दकी सेवापूजा प्रारम्भ हुई तथा गौड़ीय-वैष्णवोंकी श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायके रूपमें मान्यता स्वीकार की गयी। श्रीचक्रवर्ती ठाकुरके सम्मति क्रमसे ही श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रीगोविन्द-भाष्यकी रचना की तथा गौड़ीय-वैष्णवोंका श्रीमध्वानुगत्य प्रमाणित किया—इस

विषयमें तनिक भी सन्देहका अवकाश नहीं है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका यह साम्प्रदायिक कार्य गौड़ीय-वैष्णवोंके इतिहासमें स्वर्णाक्षरसे लिपिबद्ध रहेगा।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्वरचित 'मन्त्रार्थदीपिका' में एक विशेष घटनाका वर्णन किया है—किसी समय उन्होंने श्रीचैतन्य-चरितामृतका पठन-पाठन करते हुए कामगायत्रीके अर्थसे सम्बन्धित निम्नलिखित पयारोंपर विचार किया—

कामगायत्री—मन्त्ररूप, हय कृष्णेर स्वरूप,
सार्द्ध—चब्बिश अक्षर तार हय।
से अक्षर 'चन्द्र' हय, कृष्णे करि' उदय,
त्रिजगत् कैला काममय॥

(चै॰ च॰ म॰ २१/१२५)

अर्थात् कामगायत्री श्रीकृष्णका स्वरूप है। इस मन्त्रराजमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं तथा इस मन्त्रका प्रत्येक अक्षर पूर्ण चन्द्र है। ये चन्द्रसमूह कृष्णको उदित कराकर त्रिजगत्को प्रेममय बना देते हैं।

इन पद्योंके प्रमाणसे कामगायत्रीमें साढ़े चौबीस अक्षर हैं, किन्तु कामगायत्रीमें कौन-सा अर्द्धाक्षर है, बहुत चिन्ता करनेपर भी श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती इसे न समझ सके। व्याकरण, पुराण, तन्त्र, नाट्य तथा अलङ्कार आदि शास्त्रोंमें विशेषरूपसे छानबीन करनेपर भी उन्हें कहीं भी अर्द्धाक्षरका उल्लेख प्राप्त नहीं हुआ। उन सभी शास्त्रोंके अनुसार स्वर और व्यंजनके भेदसे उन्हें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख मिला, किन्तु कहीं भी अर्द्धाक्षरका कोई प्रमाण नहीं मिला। श्रील जीवगोस्वामी द्वारा रचित श्रीहरिनामामृत व्याकरणके संज्ञापादमें स्वर व्यंजनके प्रसङ्गमें पचास अक्षरोंका ही उल्लेख देखा। मातृकान्यास आदिमें भी मातृका रूपके ध्यानमें कहीं भी उन्हें अर्द्धाक्षरका उल्लेख नहीं मिला। बृहन्नारदीयपुराणमें राधिकाके सहस्र-नाम-स्तोत्रमें वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाजीको पचास वर्णरूपिणी कहा गया है। उसे देखकर श्रील चक्रवर्ती ठाकुरका सन्देह और भी बढ़ गया, उन्होंने सोचा कि क्या श्रील कविराज गोस्वामीने भ्रमवशतः ऐसा लिखा है? किन्तु

उनमें भ्रम होनेकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि वे भ्रम-प्रमादादि दोषोंसे सर्वथा रहित सर्वज्ञ हैं। यदि उक्त मन्त्रमें खण्ड 'त्' को अर्द्धाक्षर मानते हैं तो श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी क्रमभङ्गके दोषसे दोषी ठहरते हैं, क्योंकि उन्होंने ऐसा वर्णन किया है—

सखि हे, कृष्णमुख—द्विजराज-राज।
कृष्णवपु-सिंहासने, वसि' राज्य शासने,
करे सङ्गे चन्द्रेर समाज॥

दुइ गण्ड सुचिक्कण, जिनि' मणि-सुदर्पण,
सेइ दुइ पूर्णचन्द्र जानि।
ललाटे अष्टमी-इन्दु, ताहाते चन्दन-बिन्दु,
सेइ एक पूर्णचन्द्र मानि॥

करनख-चान्देर हाट, वंशी-उपर करे नाट,
तार गीत मुरलीर तान।
पदनख-चन्द्रगण, तले करे नर्त्तन,
नूपुरेर ध्वनि यार गान॥

(चै॰ च॰ म॰ २१/१२६-१२८)

श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने उक्त पंक्तियोंमें श्रीकृष्णचन्द्रके मुखको पहला एक चन्द्र बतलाया है, तत्पश्चात् उनके दोनों गालोंको एक-एक पूर्णचन्द्र माना है, ललाटके ऊपरी भागमें चन्दनबिन्दुको चौथा पूर्णचन्द्र माना है तथा चन्दनबिन्दुके नीचे ललाट प्रदेशको अष्टमीका चन्द्र अर्थात् अर्द्धचन्द्र बतलाया है। इस वर्णनके अनुसार पञ्चम अक्षर ही अर्द्धाक्षर होता है, किन्तु खण्ड 'त्' को अर्द्धाक्षर माननेसे अन्तिम अक्षर ही अर्द्धाक्षर होता है, पञ्चम अक्षर अर्द्धाक्षर नहीं हो पाता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अर्द्धाक्षरका निर्णय न कर पानेके कारण बड़ी द्विविधामें फँस गये। उन्होंने विचार किया यदि मन्त्राक्षरकी स्फूर्ति न हो, तो मन्त्रदेवताकी स्फूर्ति होना असम्भव है, अतएव उपास्य देवताका दर्शन न होनेसे मर जाना ही अच्छा है।

ऐसा सोचकर वे देह-त्याग करनेकी अभिलाषासे रातमें राधाकुण्डके तट पर उपस्थित हुए। रात्रिका द्वितीय प्रहर व्यतीत होनेपर अकस्मात् तन्द्राकी स्थितिमें उन्होंने श्रीवृषभानुनन्दिनीका दर्शन किया। श्रीराधाजीने बड़े स्नेहसे कहा—"हे विश्वनाथ! हे हरिवल्लभ! खेद मत करो, श्रीकृष्णदास कविराजने जो कुछ लिखा है, वह परम सत्य है। मेरे अनुग्रहसे वे मेरे अन्तःकरणकी सभी भावनाओंको जानते हैं। उनके वचनोंमें तनिक भी सन्देह मत करना। कामगायत्री मेरी और मेरे प्राणवल्लभकी उपासनाका मन्त्र है। हमलोग मन्त्राक्षरके द्वारा भक्तोंके निकट प्रकाशित होते हैं। मेरे अनुग्रहके बिना हम दोनोंको कोई भी जाननेमें समर्थ नहीं है। 'वर्णागम-भास्वत्' नामक ग्रन्थमें अर्द्धाक्षरका निरूपण किया गया है, उसे देखकर ही श्रील कृष्णदास कविराजने कामगायत्रीका स्वरूप-निर्णय किया है। तुम इसे देखकर श्रद्धालुओंके उपकारके लिए प्रकाशित करो।"

स्वयं वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाके इस आदेशका श्रवणकर श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जग उठे और "हा राधे! हा राधे!" कहकर विलाप करने लगे। फिर धैर्य धारणकर उनकी आज्ञा पालनमें तत्पर हो गये। श्रीमती राधिकाने अर्द्धाक्षर निर्णय करनेके विषयमें जो इङ्गित दिया था, उसके अनुसार उक्त मन्त्रमें 'वि' के पूर्व जो 'य' है, वही अर्द्धाक्षर है। उसके अलावा अन्य सभी अक्षर पूर्णाक्षर या पूर्णचन्द्र हैं।

श्रीमती राधिकाजीकी कृपासे मन्त्रका अर्थ अवगत होकर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने अपने इष्टदेवका साक्षाद् दर्शन किया तथा सिद्धदेहके द्वारा नित्यलीलामें परिकरत्व प्राप्त किया। इसके पश्चात् उन्होंने राधाकुण्डके तट पर श्रीगोकुलानन्द नामक श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठाकी तथा वहीं रहते समय श्रीवृन्दावनकी नित्यलीलाओंका माधुर्य अनुभवकर श्रील कविकर्णपूर द्वारा रचित श्रीआनन्दवृन्दावनचम्पूकी सुखवर्त्तिनी नामक टीकाकी रचना की।

राधापरस्तीरकुटीरवर्त्तिनः प्राप्तव्यवृन्दावन चक्रवर्त्तिनः।
आनन्दचम्पू विवृतिप्रवर्त्तिनः सान्तो-गतिर्म्मे सुमहानिवर्त्तिनः॥

अपनी परिणत वयस (वृद्धावस्था) में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर अन्तर्दशा और अर्द्धबाह्य दशामें रहकर भजन करनेमें ही अपना अधिकांश समय व्यतीत करने लगे। उनके प्रधान शिष्य श्रीबलदेव विद्याभूषण ही उनके स्थानपर शास्त्र-अध्यापनका कार्य करने लगे।

परकीयावादकी पुनर्स्थापना

श्रीधाम वृन्दावनमें षड्गोस्वामियोंका प्रभाव किञ्चित् क्षीण होनेपर स्वकीया और परकीयावादका मतभेद उठ खड़ा हुआ। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने स्वकीयावादके भ्रमको दूर करनेके लिए सुसिद्धान्तपूर्ण 'रागवर्त्मचन्द्रिका' तथा 'गोपीप्रेमामृत' नामक ग्रन्थोंकी रचनाएँ कीं। तत्पश्चात् उन्होंने उज्ज्वलनीलमणिके 'लघुत्वमत्र' (१/२१) श्लोककी आनन्दचन्द्रिका टीकामें शास्त्रीय प्रमाणों और अकाट्य युक्तियोंके द्वारा स्वकीयावादका खण्डनकर परकीया विचारकी स्थापना की है। श्रीमद्भागवतकी सारार्थदर्शिनी टीकामें भी उन्होंने परकीया भावकी पुष्टि की है।

ऐसा कहा जाता है कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीके समय कुछ पण्डितोंने परकीया उपासनाके विषयमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका विरोध किया था, किन्तु श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने अपनी प्रगाढ़ विद्वता तथा अकाट्य युक्तियोंके द्वारा उन्हें परास्त कर दिया। तब ईर्ष्यावशतः पण्डितोंने उन्हें जानसे मारनेका सङ्कल्प किया। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीवृन्दावनधामकी परिक्रमा करते थे। उन्होंने प्रभातकालीन अन्धकारमें श्रीधाम वृन्दावनकी परिक्रमा करते समय श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको किसी सघन अन्धकारपूर्ण कुञ्जमें जानसे मार डालनेकी योजना बनायी। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके परिक्रमा करते-करते उक्त सघन कुञ्जके समीप पहुँचनेपर वहाँ विरोधियोंने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको मारना चाहा, किन्तु अकस्मात् देखा कि वे वहाँ नहीं थे। अपितु उनके स्थानपर एक सुन्दर व्रजबालिका अपनी दो-तीन सहेलियोंके साथ पुष्पचयन कर रही थी। ऐसा देखकर पण्डितोंने उस बालिकासे

पूछा—"लाली! अभी-अभी एक महात्मा इधर आ रहे थे, वे किधर गये? क्या तुमने उनको देखा है?" बालिकाने उत्तर दिया—"देखा तो था, परन्तु किस ओर गये मुझे मालूम नहीं।" बालिकाके अद्भुत रूप-सौन्दर्य, कटाक्ष, भावभङ्गी और मन्द-मुस्कानको देखकर पण्डित समाज मुग्ध हो गया। उनके मनका सारा कल्मष दूर हो गया और उनका हृदय द्रवित हो गया। पण्डितोंके द्वारा परिचय पूछे जानेपर बालिकाने कहा, "मैं स्वामिनी श्रीमती राधिकाकी सहचरी हूँ। वे इस समय अपने ससुराल यावटमें विराजमान हैं। उन्होंने मुझे पुष्पचयन करनेके लिए भेजा है।" ऐसा कहते-कहते वे अन्तर्धान हो गयीं और फिर पण्डितोंने उस बालिकाके स्थानपर पुनः श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरको देखा। पण्डितोंने श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके चरणोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना की तथा श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने उन्हें क्षमा कर दिया। श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके जीवनमें ऐसी बहुत-सी आश्चर्यपूर्ण घटनाएँ सुनी जाती हैं। इस प्रकार इन्होंने स्वकीयावादका खण्डनकर शुद्ध परकीया विचारकी स्थापना की। इनका यह कार्य गौड़ीय-वैष्णवोंके लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने जिस प्रकारसे श्रीगौड़ीय-वैष्णवधर्मकी मर्यादाकी रक्षाकर पुनः श्रीवृन्दावनमें श्रीगौड़ीय-वैष्णवधर्मका प्रभाव स्थापित किया है, उसका विवेचन करनेसे उनकी अलौकिक प्रतिभासे विस्मित होना पड़ता है। उनके इस असाधारण कार्यके लिए श्रीगौड़ीय-वैष्णवाचार्योंने एक श्लोक लिखा है—

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्म प्रदर्शनात्।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्त्वात् चक्रवर्त्याख्ययाभवत्॥

अर्थात् भक्तिपथके प्रदर्शक होनेके कारण वे विश्वके नाथ अर्थात् विश्वनाथ हैं तथा शुद्धभक्तचक्र (भक्तमण्डली) में सदा अवस्थित रहनेके कारण चक्रवर्ती हैं, अतएव उनका नाम विश्वनाथ चक्रवर्ती हुआ है।

वे लगभग १६७६ शकाब्दमें लगभग एक सौ वर्षकी आयुमें माघी शुक्ला पञ्चमी तिथिको अपनी अन्तर्दशाकी अवस्थामें श्रीवृन्दावनमें

अप्रकट हुए। आज भी श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीगोकुलानन्द मन्दिरके निकट उनकी समाधि विराजमान है।

इन्होंने श्रील रूपगोस्वामीका पदाङ्क अनुसरणकर विपुल अप्राकृत भक्ति साहित्यका सृजनकर विश्वमें श्रीमन् महाप्रभुके मनोऽभीष्टको स्थापन किया है। साथ ही इन्होंने श्रीरूपानुग विरुद्ध कुसिद्धान्तोंका खण्डन भी किया है। इस प्रकार गौड़ीय-वैष्णव जगत्में ये परमोज्ज्वल आचार्य तथा प्रामाणिक महाजनके रूपमें ही प्रपूजित हुए हैं। ये अप्राकृत महादार्शनिक, अप्राकृत कवि और अप्राकृत रसिकभक्त तीनों रूपोंमें ही विख्यात हैं। कृष्णदास नामक एक वैष्णव पदकर्त्ताने श्रील चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित माधुर्यकादम्बिनीके पद्यानुवादके उपसंहारमें लिखा है—

माधुर्यकादम्बिनी—ग्रन्थ जगत कैल धन्य
चक्रवर्ती—मुखे वक्ता आपनि श्रीकृष्णचैतन्य।
केह कहेन—चक्रवर्ती श्रीरूपेर अवतार।
कठिन ये तत्त्व सरल करिते प्रचार॥
ओहे गुणनिधि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती।
कि जानिव तोमार गुण मुञि मूढ़मति॥

अर्थात् श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने 'माधुर्यकादम्बिनी' ग्रन्थकी रचनाकर समग्र जगत्को धन्य कर दिया। वास्तवमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु ही इस ग्रन्थके वक्ता हैं, वे ही श्रील चक्रवर्तीके मुखसे बोल रहे हैं। कुछ लोगोंका कहना है श्रील चक्रवर्ती ठाकुर श्रील रूप गोस्वामीके अवतार हैं। वे अत्यन्त सुकठिन तत्त्वोंको सहज-सरल रूपमें वर्णन करनेकी कलामें परम प्रवीण हैं। अहो! दयाके सागर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर! मैं अत्यन्त मूढ़ व्यक्ति हूँ। आप कृपा कर इन अप्राकृत गुणोंको मेरे हृदयमें स्फूर्ति करायें—आपके श्रीचरणोंमें ऐसी प्रार्थना है।

गौड़ीय-वैष्णवाचार्योंमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी भाँति अनेकानेक ग्रन्थोंके लेखक बहुत कम ही आविर्भूत हुए हैं। अभी भी साधारण वैष्णव समाजमें श्रील चक्रवर्ती ठाकुरके तीन ग्रन्थोंके

सम्बन्धमें एक प्रवाद सुप्रचलित है—"किरण-बिन्दु-कणा, एइ तीन निये वैष्णवपना।"

इन्होंने गौड़ीय-वैष्णव भक्ति-साहित्य-भण्डारकी अतुल-सम्पत्-स्वरूप जिन ग्रन्थों, टीकाओं और स्तवों आदिकी रचनाएँ की हैं, नीचे उनकी तालिका प्रस्तुत की जा रही है—

(१) व्रजरीतिचिन्तामणि, (२) श्रीचमत्कारचन्द्रिका, (३) श्रीप्रेमसम्पुटः (खण्डकाव्यम्), (४) गीतावली, (५) सुबोधिनी (अलङ्कार-कौस्तुभ टीका), (६) आनन्दचन्द्रिका (उज्ज्वलनीलमणि टीका), (७) श्रीगोपाल-तापनी टीका, (८) स्तवामृतलहरी धृत—(क) श्रीगुरुतत्त्वाष्टकम्, (ख) मन्त्रदातृ-गुरोरष्टकम्, (ग) परमगुरोरष्टकम्, (घ) परात्परगुरोरष्टकम्, (ङ) परमपरात्पर गुरोरष्टकम्, (च) श्रीलोकनाथाष्टकम्, (छ) श्रीशचीनन्दनाष्टकम्, (ज) श्रीस्वरूप-चरितामृतम्, (झ) श्रीस्वप्नविलासामृतम्, (ञ) श्रीगोपालदेवाष्टकम्, (ट) श्रीमदनमोहनाष्टकम्, (ठ) श्रीगोविन्दाष्टकम्, (ड) श्रीगोपीनाथाष्टकम्, (ढ) श्रीगोकुलानन्दाष्टकम्, (ण) स्वयंभगवत्ताष्टकम्, (त) श्रीराधाकुण्डाष्टकम्, (थ) जगन्मोहनाष्टकम्, (द) अनुरागवल्ली, (ध) श्रीवृन्दादेव्याष्टकम्, (न) श्रीराधिका-ध्यानामृतम्, (प) श्रीरूपचिन्तामणिः, (फ) श्रीनन्दीश्वराष्टकम्, (ब) श्रीवृन्दावनाष्टकम्, (भ) श्रीगोवर्धनाष्टकम्, (म) श्रीसंकल्प-कल्पद्रुमः, (य) श्रीनिकुञ्जकेलिविरुदावली (विरुत्काव्य), (र) सुरतकथामृतम् (आर्यशतकम्), (ल) श्रीश्यामकुण्डाष्टकम्। (९) श्रीकृष्ण-भावनामृतम् महाकाव्यम्, (१०) श्रीभागवतामृत-कणा, (११) श्रीउज्ज्वल-नीलमणि-किरणः, (१२) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दुः, (१३) रागवर्त्म-चन्द्रिका, (१४) ऐश्वर्यकादम्बिनी (अप्राप्या), (१५) श्रीमाधुर्यकादम्बिनी, (१६) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु टीका, (१७) श्रीआनन्दवृन्दावन-चम्पूः टीका, (१८) दानकेलिकौमुदी टीका, (१९) श्रीललितमाधव नाटक टीका, (२०) श्रीचैतन्यचरितामृत टीका (असम्पूर्ण), (२१) ब्रह्मसंहिता टीका, (२२) श्रीमद्भगवद्गीताकी 'सारार्थवर्षिणी' टीका, (२३) श्रीमद्भागवतकी 'सारार्थदर्शिनी' टीका।

श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायैक-संरक्षक, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति तथा समितिके अन्तर्गत श्रीगौड़ीयमठोंके प्रतिष्ठाता आचार्य-केशरी मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

महाराजने स्वरचित ग्रन्थोंके अतिरिक्त श्रील भक्तिविनोद ठाकुर आदि पूर्वाचार्योंके ग्रन्थोंका बँगला भाषामें पुनः प्रकाशन किया है। उनकी हार्दिक अभिलाषा, उत्साहदान और अहैतुकी कृपासे आज राष्ट्रीय भाषा हिन्दीमें जैवधर्म, श्रीचैतन्य-शिक्षामृत, श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा, श्रीशिक्षाष्टक, भक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दु, उज्ज्वलनीलमणि-किरण, भागवतामृत-कणा, श्रीगीतगोविन्द, भजनरहस्य, गौड़ीय गीति-गुच्छ, श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीवेणुगीत, भक्तितत्त्व-विवेक, वैष्णव-सिद्धान्त माला, श्रीब्रह्मसंहिता, रागवर्त्मचन्द्रिका, श्रीबृहद्भागवतामृतम्, गौड़ीय-कण्ठहार, श्रीश्रीप्रेमसम्पुट आदि ग्रन्थोंके हिन्दी-संस्करण प्रकाशित हुए हैं तथा क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।

श्रील चक्रवर्ती ठाकुरका यह मूल ग्रन्थ संस्कृत भाषामें है। इसके बहुतसे संस्करण बँगला भाषामें प्रकाशित हुए हैं। उनमेंसे श्रीधाम वृन्दावन निवासी श्रीहरिभक्त दास द्वारा अनूदित और सम्पादित 'श्रीश्रीचमत्कारचन्द्रिका' ग्रन्थ अन्य बँगला संस्करणोंकी तुलनामें कहीं अधिक भावपूर्ण, सहज-सरल और बोधगम्य होनेसे यह हिन्दी संस्करण उसीके आधारपर अनूदित हुआ है। बँगलासे हिन्दी-अनुवाद कर प्रतिलिपि प्रस्तुत करनेमें बेटी मधु खण्डेलवाल (एम॰ए॰, पी॰एच॰डी॰) तथा बेटी सविताकी, प्रूफ संशोधनके लिए श्रीमान् भक्तिवेदान्त माधव महाराज और श्रीओमप्रकाश व्रजवासी (एम॰ए॰, एल॰एल॰बी, साहित्यरत्न), कम्पोजिंगके लिए बेटी वृन्दा देवी तथा ले-आऊटके लिए बेटी शान्ति दासीकी सेवा-प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय और विशेष उल्लेखनीय हैं। मुख पृष्ठका चित्र श्रीमती श्यामरानी दासीने प्रस्तुत किया है तथा मुख पृष्ठका डिजाइन श्रीमान् कृष्णकारुण्य दास ब्रह्मचारीने किया है। श्रीनारायण दास अग्रवालने इस ग्रन्थके प्रकाशनके लिए सम्पूर्ण अर्थ व्ययकर सहयोग दिया है। श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग गान्धर्विका-गिरिधारी इन पर प्रचुर कृपाशीर्वाद वर्षण करें—उनके श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि भक्ति-पिपासु, रसिक और भावुक तथा व्रजरसके प्रति लुब्ध रागानुगाभक्तिके साधकोंमें इस ग्रन्थका समादर

होगा। श्रद्धालुजन इस ग्रन्थका पाठकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रेमधर्ममें प्रवेश प्राप्त कर सकेंगे।

अन्तमें भगवत्–करुणाके घन–विग्रह परम आराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म मेरे प्रति प्रचुर कृपा वर्षण करें, जिससे उनकी मनोभीष्ट सेवामें अधिकाधिक अधिकार प्राप्त कर सकूँ—यही उनके प्रेम प्रदानकारी श्रीचरणोंमें सकातर प्रार्थना है।

शीघ्रतावश प्रकाशन हेतु इस ग्रन्थमें कुछ त्रुटियोंका रह जाना स्वाभाविक है। श्रद्धालु पाठकगण उसे संशोधन करके पाठ करेंगे और हमें सूचित करेंगे, जिससे कि अगले संस्करणमें हम उन त्रुटियोंका संशोधन कर सकें।

श्रीमोक्षदा एकादशी तिथि
श्रीचैतन्याब्द ५१९
११ दिसम्बर, २००५ ई०

श्रीहरि–गुरु–वैष्णव–कृपालेश–प्रार्थी
दीन–हीन
त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

श्रीश्रीचमत्कारचन्द्रिका

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्राय नमः

मङ्गलाचरणम्

यत्कारुण्यं शुचिरस चमत्कारवारां निधींस्तान्
नृभ्यो राधा गिरिवरभृतोः स्पर्शयत्तर्षयेन्नः।
तेषामेकं पृषतमचिराल्लब्धुमाशाक्षिदानैः
सोऽव्यान्मन्तो दशनविततेः कृष्णचैतन्यरूपः॥

भावानुवाद—जिनकी करुणा (कृपा) मनुष्यको श्रीश्रीराधा-गिरिवरधारीके शुचि अर्थात् उन्नत-उज्ज्वल रसमय चमत्कार-सागरका स्पर्श कराती है, अर्थात् जिनकी कृपा होनेसे मनुष्यका मन श्रीकृष्ण सम्बन्धित पारावार-विहीन (असीम) शृङ्गाररस-सागरका स्पर्श करता है तथा उसके लिए तृष्णातुर होता है। अर्थात् जिस प्रकार जलपिपासु व्यक्ति जलके लिए व्याकुल होता है, उसी प्रकार जिनकी कृपा प्राप्त होनेसे व्यक्ति श्रीश्रीराधाकृष्णकी उन्नत-उज्ज्वल-रसमयी लीलाकथाके श्रवणादिके लिए व्याकुल रहता है, वे ही स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु उज्ज्वल-रसमय चमत्कार-सागरकी एक बिन्दु प्राप्त करनेकी आशाका सञ्चार करनेवाले अपने नयन-कटाक्षके द्वारा अपराधरूपी दन्त-पंक्तिसे हमारी रक्षा करें॥

प्रथम कौतूहल

मातः प्रातः किमिह कुरुषे नह्यते पेटिकेयं
यत्नादस्यां किमिह निहितं किन्तवानेन सूनो!
ज्ञातव्येन प्रणयिसखिभिः खेल गेहाद् बहिस्त्वं
जिज्ञासा मे भवति महती ब्रूहि नो चेन्न यामि॥१॥

भावानुवाद—एक दिन प्रातःकाल व्रजराज-महिषी श्रीयशोदा एक पेटिकामें वस्त्रादि विविध शृङ्गारके द्रव्य सजाकर रख रही थीं। उसी समय श्रीकृष्ण वहाँ आये और मातासे पूछने लगे—मैया! सुबह-सुबह तुम यह क्या कर रही हो?

यशोदा—बेटा! एक पेटी सजा रही हूँ।

श्रीकृष्ण—इतने यत्नसे इसमें क्या रख रही हो?

यशोदा—बेटा! तुम्हें इसे जाननेकी आवश्यकता नहीं है, तुम बाहर जाकर अपने प्रिय सखाओंके साथ खेलो।

श्रीकृष्ण—मैया! मुझे इसे जाननेकी बड़ी इच्छा हो रही है, तुम बतला दो न। यदि नहीं बतलाओगी, तो मैं यहाँसे नहीं जाऊँगा॥१॥

अस्यां चन्दन चन्द्र पङ्कज रजः कस्तूरिका कुङ्कुमा-
द्यङ्गानामानुलेपनार्थमथ तन्नेपथ्यहेतोस्तथा।
काञ्ची कुण्डल कङ्कणाद्यनुपमं वैदूर्यमुक्ताहरि-
द्रत्नाद्यम्बरजातमप्यतिमहानर्घ्यं क्रमाद्वर्त्तते॥२॥

भावानुवाद—यशोदा—वत्स! मैं इस पेटिकामें अङ्गोंमें अनुलेपनके लिए चन्दन, कर्पूर, पद्म-पराग, कस्तूरिका तथा कुङ्कुम आदि और अङ्गोंको विभूषित करनेके लिए काञ्ची (करधनी), कुण्डल, कङ्कण, अनुपम वैदूर्यमणि, मुक्ता तथा मरकत रत्नादि और पहननेके लिए बहुमूल्य वस्त्रादि रख रही हूँ॥२॥

अत्रेदं निदधासि किं मम कृते रामस्य वा नन्दन!
ब्रूमस्त्वामवधेहि या तु भवतोः हेतुः कृता पेटिका।

साऽन्याऽतोऽपि बृहत्यनर्घ्य मणिभागेवं बलस्यापरा
तत् कस्मिंश्चन ते जनन्युरुरियान् स्नेहो यतो यास्यति॥३॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण—मैया! इस पेटीमें जो कुछ रख रही हो, वह सब क्या मेरे लिए है अथवा भैया बलरामके लिए है?

यशोदा—हे पुत्र! मैं बतला रही हूँ, सुनो। जो पेटिका तुम्हारे लिए रखी है, वह इससे बहुत बड़ी है। उसमें इससे भी बहुमूल्य आभूषण और वस्त्र रखे हैं, इसी तरह बलरामके लिए भी एक और पेटिका रखी है।

श्रीकृष्ण—अरी मैया! जब आप यह पेटिका मेरे लिए अथवा बड़े भैयाके लिए नहीं सजा रही हो, तो फिर किसके लिए सजा रही हो? आपका ऐसा स्नेहभाजन और कौन है?॥३॥

अस्मत्पुण्यतपः फलेन विधिना दत्तोऽसि मह्यं यथा
मत्प्राणावनहेतवे व्रजपुरालङ्कार सूनो तथा।
कन्या काचिदिहास्ति मन्नयनयोः कर्पूरवर्तिः परा
तस्याः अम्बर मण्डनादिधृतये सेयं कृता पेटिका॥४॥

भावानुवाद—यशोदा—हे वत्स! व्रजपुरके अलङ्कार! हमारे पुण्य तपके फलसे हमारे प्राणोंकी रक्षाके लिए विधाताने जैसे तुमको हमें प्रदान किया है, उसी प्रकार हमारी जीवन-स्वरूप एक कन्या इस गोकुलमें है। वह हमारे तापित-नयनोंके लिए श्रेष्ठ कर्पूरकी वर्ति अर्थात् नेत्रोंके तापको हरण करनेवाले कर्पूरके लेपके समान है, उसीके लिए वस्त्र और आभूषण रखनेके लिए मैंने यह पेटिका तैयार करवायी है॥४॥

काऽसौ कस्य कुतस्तरां जननि! वा तस्यामतिस्निह्यसि
क्वाऽऽस्ते तद्वद सर्वमेव शृणु भो या मे सखी कीर्त्तिदा।
तस्याः कुक्षिखनेरनर्घ्यमतुलं माणिक्यमेतत् स्वभा-
वीचीभिः वृषभानुमुज्ज्वलयते मूर्त्तं तदीयं तपः॥५॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण—मैया! वह कन्या कौन है? किसकी बेटी है? वह कहाँ रहती है और आप उससे इतना स्नेह क्यों करती हो? ये सब बातें मुझे बताओ।

यशोदा—हे वत्स! सुनो—मेरी जो कीर्त्तिदा नामकी एक सखी है, उसीकी कोखसे अनर्घ्य या महा-मूल्यवान और अतुलनीय एक कन्यारत्न प्रादुर्भूत होकर अपनी कान्तिकी तरङ्गोंसे वृषभानुको अर्थात् ज्येष्ठमासके सूर्यको अथवा दूसरे अर्थमें गोपराज वृषभानुको उज्ज्वल करती है, अर्थात् उनका यश सर्वत्र प्रकाशित करती है। इस कन्याको वृषभानु राजाकी मूर्त्तिमान तपस्या कहना ही उचित है॥५॥

सौन्दर्याणि सुशीलता गुरुकुले भक्तिस्त्रपाशालिता
सारल्यं विनयित्वमित्यधिधरं ये ब्रह्मसृष्टा गुणाः।
ते यत्रैव महत्वमापुरथ मे स्नेहस्तु नैसर्गिकः
सा राधेत्यथ गात्रमुत्पुलकितं कृष्णोऽशुकेनाप्याधात्॥६॥

भावानुवाद—हे वत्स! सौन्दर्य-राशि, सुशीलता, गुरुजनोंके प्रति भक्ति, लज्जाशीलता, सरलता, विनम्रता इत्यादि जो गुण श्रीब्रह्मा द्वारा पृथ्वीपर सृष्ट हुए हैं, वह गुणसमूह उस कन्याका आश्रय करके स्वयं ही महत्त्वको प्राप्त हुए हैं। गुण जिसका आश्रय करते हैं, उसे महत्त्वपूर्ण बनाते हैं, किन्तु इस कन्याका आश्रय करके गुण स्वयं ही महत्त्वपूर्ण हुए हैं—यही आश्चर्यकी बात है। इसीलिए उसके प्रति मेरा स्वाभाविक स्नेह है तथा उसका नाम 'राधा' है।

माताके मुखसे श्रीराधाका नाम और गुणोंका श्रवण करके श्रीकृष्णका शरीर पुलकित हो गया, तब उन्होंने अपने अङ्गोंको वस्त्रसे आच्छादित कर लिया॥६॥

सा पत्युः सदनेऽस्ति सम्प्रति पतिश्चास्या इहैवागतो
गोष्ठेन्द्रेण समं स्वगैहिककृति-व्यासङ्गहेतोर्बहिः।
आस्ते संसदि यर्हि वीक्षितुमयं मामेष्यति प्रीतितो
वक्ष्याम्येनमिमां वहन् निजगृहं तां प्रापयन यास्याति॥७॥

भावानुवाद—वह वधू अपने पतिके गृहमें है। इस समय उसका पति भी हमारे यहाँ ही आया हुआ है तथा किसी गृह-कार्यके लिए गोष्ठराज (श्रीनन्दरायजी) के साथ परामर्श करनेके लिए बाहर सभा (बैठक) में बैठा हुआ है। जब वह मुझसे मिलने अन्तःपुरमें

आयेगा—तब मैं उससे प्रीतिके साथ कहूँगी—हे अभिमन्यु! तुम इस पेटिकाको अपने घर ले जाकर राधाको दे देना॥७॥

अत्रान्तरे निकटमागतया लवङ्ग–
वल्या द्रुतं निजगदे शृणु गोष्ठराज्ञि!
आहूतपूर्वमहि यत् तदिदं सुवर्ण–
कारद्वयं कलय रङ्गण–टङ्गणाख्यम्॥८॥

भावानुवाद—उसी समय लवङ्गलता नामकी एक दासी तीव्र गतिसे यशोदाजीके पास आकर बोली—हे गोष्ठरानी! देखिये तो, आपने पहले जिन्हें बुलवाया था, वे रङ्गण तथा टङ्गण नामके दोनों स्वर्णकार आये हैं॥८॥

श्रुत्वैतदाऽऽत्तमुदुवाच ततो व्रजेशा
कृष्णस्य–कुण्डल किरीट–पदाङ्गदादि।
निर्मापयन्त्यचिरतो बहिरेमि यावत्
त्वा पेटिकां नय गृहान्तरितो धनिष्ठे॥९॥

भावानुवाद—लवङ्गलताकी बात सुनकर व्रजेश्वरी यशोदा आनन्दित होकर धनिष्ठासे बोली—हे धनिष्ठे! कृष्णके लिए कुण्डल, किरीट तथा पदाङ्गद इत्यादि अलङ्कार बनवानेके लिए मैं बाहर जा रही हूँ। शीघ्र ही लौट आऊँगी—तुम तब तक घरमें रखी इस पेटिकाकी देखभाल करना॥९॥

इत्युक्त्वास्यां गतायां सुबल मुख–सुहृत्स्वागतेष्वात्तमोद–
स्तैःसाकं मन्त्रयित्वा किमपि रहसि तां पेटिकामुद्घटय।
निष्काश्यातः समस्तं मणि वसन कुलाद्यर्पयित्वा धनिष्ठा–
पानौ तस्यां प्रविश्य स्वयमथ सखिभिर्मुद्रयामास तां सः॥१०॥

भावानुवाद—यह कहकर व्रजेश्वरी श्रीयशोदा बाहर चली गयीं और तभी सुबल इत्यादि प्रियनर्म सखा वहाँ आये। श्रीकृष्ण उनके आगमनसे परमानन्दित हुए तथा उनके साथ परामर्शकर निर्जन स्थानमें उस पेटिकाको खोलकर उन्होंने उसमें रखी हुई मणियों, आभूषण,

वस्त्र इत्यादि समस्त वस्तुओंको बाहर निकालकर धनिष्ठाके हाथमें दे दिया तथा स्वयं उसमें बैठ गये और सखाओंकी सहायतासे पेटिकाको बन्द कर दिया॥१०॥

द्वित्रिक्षणोपरमतः प्रणमन्तमेत्य
तत्राभिमन्युमभिवीक्ष्य पुरो यशोदा।
पृष्ट्वा शमाह शृणु भो भवतो गृहिण्या
हेतोः कृताद्य मणिमण्डन पेटिकेयम्॥११॥

भावानुवाद—कुछ देर बाद श्रीव्रजेश्वरीके अपने कक्षमें आगमन करनेपर अभिमन्युने आकर उन्हें प्रणाम किया। श्रीयशोदाने उसे सम्मुख देखकर उसका कुशल पूछा और बोलीं—हे अभिमन्यु! तुम्हारी पत्नीके लिए मणिमय अलङ्कारोंसे पूर्ण यह पेटिका तैयार हुई है॥११॥

अस्यामनर्घ्य मणिकाञ्चन दाम वासः
कस्तूरिकाद्यति मनोहरमस्ति वस्तु।
नान्यत्र विश्वसिमि तेन वहंस्त्वमेव
गत्वा गृहं निभृतमर्पय राधिकायै॥१२॥

भावानुवाद—इसमें महामूल्यवान मणियाँ, काञ्चनमाला, वस्त्र, कस्तूरिका इत्यादि मनोरम वस्तुएँ रखी हुई हैं। मैं अन्य किसीका भी विश्वास नहीं करती, अतएव तुम इस पेटिकाको स्वयं अपने घर ले जाकर एकान्तमें राधिकाको दे देना॥१२॥

सन्देष्टव्यमिदं मदक्षि सुखदे श्रीकीर्त्तिदा–कीर्त्तिदे
राधे प्रेषित–पेटिकान्तर गतेनात्युज्ज्वल–ज्योतिषा।
त्वद्गात्रोचित–मण्डनेन नितरां त्वद्वल्लभेन स्फुटं
त्वं शृङ्गारवती सदा भव चिरञ्जीवेति सौभाग्यतः॥१३॥

भावानुवाद—उसे यह समाचार भी कहना—“हे मदक्षि–सुखदे (मेरे नयनोंको सुख प्रदान करनेवाली)! हे कीर्त्तिदा–कीर्त्तिदे (अपनी माता कीर्त्तिदाकी कीर्त्ति बढ़ानेवाली)! हे राधे! मेरे द्वारा भेजी हुई इस अति

उज्ज्वल ज्योतिर्मय पेटिकाके भीतर तुम्हारे वल्लभ (अतिप्रिय) पक्षान्तरमें श्रीश्यामसुन्दर तथा तुम्हारे देहोचित इस मण्डनके द्वारा तुम सदैव शृङ्गारवती अथवा वेशवती पक्षान्तरमें उज्ज्वल रसवती होओ तथा सौभाग्य प्राप्तकर चिरञ्जीवी रहो॥"१३॥

श्रुत्वैतत्त्वरितं व्रजेश्वरि! यथैवाज्ञा तवेति ब्रुवन्
धृत्वा मूर्द्धणि पेटिकां स्वभवनं प्रीत्याऽभिमन्युर्यदा।
गन्तुं प्रक्रमते स्म तह्यभिसरन् कृष्णस्तमारुह्य तद्–
भार्यां हन्त! निज–प्रियां स्मितमधात् स्वं कौतुकाब्धौ किरन्॥१४॥

भावानुवाद—यह सुनकर अभिमन्युने कहा—हे व्रजेश्वरि! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। यह कहते हुए उसी क्षण उस पेटिकाको सिरपर रखकर प्रीतिपूर्वक वह अपने घर जानेके लिए उद्यत हुआ। श्रीकृष्ण भी अभिमन्युके सिरपर चढ़कर उसीकी पत्नी—अपनी प्रेयसी श्रीराधिकाके समीप अभिसारी होकर स्वयंको कौतुक-समुद्रमें निमग्न करते हुए मृदु-मधुर हास्य करने लगे॥१४॥

गोपः सोऽपि मुदा हृदाह तदहं धन्यः कृतार्थोऽस्मि यन्
मञ्जूषान्तरिहास्ति काञ्चन–मणीराशिर्महादुर्लभः।
भारादेव मयानुमीयत इतः क्रीणामि कोटीर्गवां
यद् गोवर्द्धन मल्लवन्मम गृहे लक्ष्मीर्भवित्री परा॥१५॥

भावानुवाद—वह अभिमन्यु गोप मन-ही-मन सोचने लगा—आज मैं धन्य हो गया, कृतार्थ हो गया। इस पेटिकाके भारसे अनुमान होता है कि इसमें जो महादुर्लभ मणिराशि रखी है, मैं उसके द्वारा कोटि-कोटि गायें खरीद लूँगा, जिससे गोवर्धन मल्लके समान हमारे घरमें भी परम लक्ष्मीका निवास होगा॥१५॥

गोष्ठाधीश पुराद् व्रजन् स्वनिलयाभ्यासावधि स्थानम–
प्यारोहत्–पुलकोल्लसत्तनुरतिप्रीति–प्लुताक्षिद्वयः।
तादृगभार–शिरा अपि क्षणमपि ग्लानिं स नैवान्बभूत्
पूर्णानन्दघनं वहन् कथमहो जानातु वर्त्मश्रमम्॥१६॥

भावानुवाद—अभिमन्यु इस प्रकार सोचते हुए गोष्ठाधीश श्रीनन्द महाराजकी पुरी नन्दगाँवसे यात्रा करके अपने घर तक आते-आते पुलकसे परिपूर्ण हो रहा था। उसके समस्त अङ्ग उल्लसित हो रहे थे और प्रीतिकी अधिकताके कारण दोनों आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। अधिक क्या, सिरपर इतना भार वहन करनेसे उसने क्षण कालके लिए भी किसी भी प्रकारकी थकानका अनुभव नहीं किया। पूर्णानन्दघन वस्तुको वहन करके क्या कभी भी किसीको श्रमका बोध हो सकता है?॥१६॥

गत्वा पुरं स्वजननीं जटिलामुवाच
मातः! शुभक्षणत एव गृहादगच्छम्।
पश्याद्य काञ्चन मणीवसनादि पूर्णा
लब्धाहतिभाग्यभरतः किल पेटिकेयम्॥१७॥

भावानुवाद—अनन्तर वह घर जाकर अपनी माता जटिलासे बोला—माँ! मैं आज बड़ी शुभ घड़ीमें घरसे बाहर गया था। देखो, आज मैंने अत्यधिक सौभाग्यवशतः स्वर्ण, मणि तथा वस्त्रादिसे पूर्ण इस पेटिकाको प्राप्त किया है॥१७॥

दत्वा स्वयं व्रजपयैव तव स्नुषायै
शृङ्गार-हेतव इहाप्रतिम प्रसादम्।
कुर्वाणया सपदि तां प्रति पद्यमेकं
प्रोचे च तत् कलय सापि शृणोत्वदूरे॥१८॥

भावानुवाद—हे मातः! व्रजेश्वरीने स्वयं तुम्हारी पुत्रवधूके शृङ्गारके लिए यह अतुलनीय प्रसाद प्रदान किया है तथा उसी समय एक पद्य अथवा श्लोककी रचना कर उसे कहकर भेजा है। उस श्लोकको तुम श्रवण करो और वह भी (श्रीराधा भी) पास आकर श्रवण करे॥१८॥

सन्देष्टव्यमिदं मदक्षिसुखदे श्रीकीर्त्तिदा-कीर्त्तिदे
राधे प्रेषितपेटिकान्तर गतेनात्युज्ज्वल ज्योतिषा।

त्वद्गात्रोचित मण्डनेन नितरां त्वद्वल्लभेन स्फुटं
त्वं शृङ्गारवती सदा भव चिरञ्जीवेति सौभाग्यतः॥१९॥

भावानुवाद—समाचार यह है—"हे मदक्षि-सुखदे! हे कीर्त्तिदा-कीर्त्तिदे! हे राधे! मेरे द्वारा भेजी पेटिकामें अति उज्ज्वल, ज्योतिपूर्ण तुम्हारे अतिप्रिय तथा देहोचित मण्डन अथवा अलङ्कार द्वारा तुम सदैव शृङ्गारवती होओ और सौभाग्यसे परिपूर्ण होकर चिरञ्जीवी रहो॥"१९॥

हृदाह तुष्टा जटिलातिभद्र-
मभूदिदं साम्प्रतमेव दिष्ट्या।
वधूः भविष्यत्यति सुप्रसन्ना
पुत्रेऽत्र मे लब्ध-निजोपकारा॥२०॥

भावानुवाद—इन आशीर्वादपूर्ण वचनोंको श्रवणकर जटिला बड़ी सन्तुष्ट हुई तथा मन-ही-मन कहने लगी—आज सौभाग्यसे बड़ा ही मङ्गल उपस्थित हुआ है। इस उपकार (उपहार) को प्राप्त करके वधू मेरे पुत्रके प्रति अत्यन्त प्रसन्न होगी॥२०॥

स्मित्वाऽथ सा स्पष्टमुवाच सूनो!
स्नुषा तथाहं भवतः स्वसा वा।
न पारयिष्यत्यतिभारमेतद्
इतः समुत्थापयितुं कदापि॥२१॥

भावानुवाद—तदनन्तर किञ्चित् मुसकराकर जटिला स्पष्ट रूपसे बोली—हे वत्स! तुम्हारी पत्नी, मैं अथवा तुम्हारी बहन कोई भी इस अत्यधिक भारी पेटिकाको इस स्थानसे उठानेमें किसी प्रकार भी सक्षम नहीं है॥२१॥

मञ्जुषिकां तत्त्वमितो गृहीत्वा
शय्या-गृहान्तर्वृषभानु पुत्र्याः।
वेद्यां निधायैहि यथोद्घटय
सेमां प्रियं मण्डनमाशु पश्येत्॥२२॥

भावानुवाद—अतएव तुम ही इस पेटिकाको यहाँसे ले जाकर वृषभानुकुमारीके शयन-कक्षकी वेदीपर रख आओ, जिससे वह इस पेटिकाको खोलकर अपने प्रिय आभूषणोंको शीघ्र ही देख सके॥२२॥

अत्रान्तरे सहचरीष्वति हर्षिणीषु
राधा रहस्यमलधीः ललितामुवाच।
अद्यालि! वामकुचदो-र्नयनोरु चारु
किं स्पन्दते मम वदेत्यथ सा-जगाद॥२३॥

मन्ये मनोहरमिहास्ति मणीन्द्रभूषा-
जातं स्वयं व्रजपया ह्यत एव दत्तम्।
तत्प्राप्तिरूप शुभसूचक एव राधे!
स्पन्दोऽतिसौभगभरावधिहेतुरेषः ॥२४॥

भावानुवाद—जब अभिमन्यु उस पेटिकाको श्रीराधाजीके शयन-कक्षमें रखकर चला गया, तब श्रीराधिकाकी सहचरियाँ अत्यधिक आनन्द प्रकाश करने लगीं। उस समय विमल बुद्धिमती श्रीराधा निर्जनमें ललितासे बोलीं—"सखि! बतलाओ तो आज अ-स्थान पर और अ-समय ही मेरा वाम-कुच, वाम-बाहु, वाम-नयन तथा वाम-उरु आदि सुचारु रूपसे स्पन्दित क्यों हो रहे हैं?" इसके उत्तरमें ललिता बोली—"श्रीराधे! लगता है, इस पेटिकामें मणीन्द्रभूषाजात अर्थात् उत्तम मणिसे निर्मित्त भूषण पक्षान्तरमें मणि-भूषण परिधानकारी श्रीकृष्ण विद्यमान हैं। सचमुच, व्रजेश्वरीने स्वयं ही इसे प्रदान किया है, अतएव तुम्हारे वाम-अङ्गका स्पन्दन उनकी प्राप्तिरूप शुभ सूचनाको ही प्रकट कर रहा है। हे सखि! यह स्पन्दन अति सौभाग्यकी चरमसीमाकी प्राप्तिके कारण ही हो रहा है॥"२३-२४॥

दृष्ट्वैव मन्मनसि कञ्चन भावमेषा
मञ्जुषिकैव ललिते! वितनोति बाढ़म्।
उद्घाटयामि तदिमामधुनैव वीक्षे
सौभाग्यदं किमिह भूषणरत्नमस्ति॥२५॥

भावानुवाद—श्रीराधाजी कहने लगीं—हे ललिते! इस पेटीको देखनेमात्रसे ही मेरे मनमें कोई एक अनिर्वचनीय भाव (कौतूहल) उत्पन्न हो रहा है। अतएव, इसे शीघ्र ही खोलकर देखो कि इसमें सौभाग्यदायक कौन-से भूषणरत्न हैं?॥२५॥

इत्थं सखीषु सकलासु तदोत्सुकासु
तां पेटिकामभित एव समासितासु।
द्रष्टुं गतासु निविड़त्वमथ स्वयं सा
दामान्युदस्य रभसादुदघाटयत्ताम्॥२६॥

भावानुवाद—इस प्रकार सखियाँ उत्सुक होकर "उस पेटिकामें कौन-सी निगूढ़ वस्तु है"—यह देखनेके लिए उस पेटिकाके चारों ओर खड़ी हो गयीं। फिर स्वयं श्रीराधाने अपने अङ्गोंके सारे आवरणोंको उतारकर शीघ्र ही उस पेटिकाको खोल दिया॥२६॥

यावत् किमेतदिति ता अहहेति होचु-
र्यावद् भृशं जहसुरेव स्वहस्त-तालम्।
यावत्रपा सहचरी प्रतिबोधमाप
यावत् प्रमोदलहरी शतमुल्लास॥२७॥

यावन्निरावरणमङ्ग मनङ्ग-नक्रो
जग्रास यावदतिसम्भ्रम आप पुष्टिम्।
तत्पूर्वमेव सहसा ततः उत्थितः स
सर्वाः कलानिधि रहो युगपच्चुचुम्ब॥२८॥

भावानुवाद—पेटिकाको खोलते ही सखियाँ—अहह!! यह क्या है!! कहती हुईं हाथसे ताली बजाकर जोर-जोरसे हँसने लगीं। श्रीराधिकाकी निद्रित लज्जारूप सहचरी जाग उठी तथा शत-शत प्रमोद लहरी उल्लसित होने लगी। तब उनके अनावृत अङ्गोंको अनङ्गरूपी मगरने ग्रास कर लिया और वे लज्जासे अत्यन्त घबड़ा गयीं। किन्तु आश्चर्यका विषय यह था कि इससे पूर्व ही कलानिधि श्रीकृष्णने सहसा उस पेटिकासे उठकर एक साथ ही सबके मुखका चुम्बन कर दिया॥२७-२८॥

धन्यं भूषणवस्तु ते गृहपतिर्धन्यो यदानीतवान्
धन्या गोष्ठ-महेश्वरी सखि! यया स्नेहादिदं प्रेषितम्।
त्वं शृङ्गारवति भवेति च पुन धन्यैव सन्देश-वाग्
धन्यं गेहमिदं यदेत्य निभृतं मञ्जुषिका खेलति॥२९॥

भावानुवाद—तदनन्तर ललिताने श्रीराधासे कहा—"हे सखि! यह जो भूषणादि वस्तुएँ आयी हैं—वह धन्य हैं। जो इन्हें लाया है—वह तुम्हारा पति भी धन्य है तथा जिसने बड़े स्नेहसे इन भूषणोंको भेजा है—वह गोष्ठमहेश्वरी श्रीयशोदा भी धन्य हैं। 'हे राधे! मेरे द्वारा प्रेरित इस भूषण द्वारा तुम शृङ्गारवती होओ'—यह समाचार वाणी भी धन्य है और जहाँ यह पेटिका आकर क्रीड़ा कर रही है—वह घर भी धन्य है॥"२९॥

गोष्ठेशा निदिदेश ते बहुतर स्नेहात्ततस्ते पतिः
श्वश्रूरालि तदन्वतीव रभसाद्दत्वैव मञ्जूषिकाम्।
त्वं शृङ्गारवती भवेत्ययि गुरुत्रया वचः-पालनं
गान्धर्वे! कुरु सर्वथेति ललिता-वाण्याथ सा तत्रपे॥३०॥

भावानुवाद—"हे सखि! गोष्ठेश्वरीने अत्यन्त स्नेहपूर्वक तुम्हें आदेश दिया है—'मैंने जो भेजा है, उसके द्वारा तुम शृङ्गारवती होओ' तथा तुम्हारे पति और सास दोनोंने भी इसमें सम्मति प्रकट की है। अतएव, हे गान्धर्विके! सदा ही इन तीनों गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन करो।" ललिताकी यह वाणी सुनकर श्रीराधा बड़ी लज्जित हुई॥३०॥

मञ्जूषिकान्तरिह मे बहुरत्नभूषा
आसन् स्वयं व्रजपया सखि! या वितीर्णाः।
संरक्ष्य ताः क्वचन धूर्त्त इह प्रविष्ट-
श्चौराऽयमस्ति तदिदं वद भो मदार्याम्॥३१॥

भावानुवाद—तब श्रीराधा कहने लगी—"सखि! व्रजेश्वरीने अवश्य ही स्वयं इस पेटिकामें बहुत-से रत्न-अलङ्कार आदि मेरे लिए दिये थे, परन्तु एक धूर्त्त चोर उन्हें चुराकर किसी अन्य स्थानपर रखकर स्वयं ही इस पेटिकामें प्रवेशकर बैठ गया है। तुम शीघ्र ही यह सारा वृत्तान्त आर्या (सास) जटिलासे कह दो॥"३१॥

राधाभिसारिन्नभिमन्युवाहन!
क्षितिं सतीशून्यतमां चिकीर्षो!
प्रयच्छ रत्नाभरणानि शीघ्रं
नो चेदिहार्यामहमानयामि॥३२॥

भावानुवाद—तदनन्तर ललिताने श्रीकृष्णसे कहा—"हे राधाभिसारिन्! हे अभिमन्युवाहिन्! अर्थात् तुम अभिमन्युके सिरपर चढ़कर उसकी ही पत्नी राधाके समीप अभिसारकी इच्छासे आये हो—तुम पृथ्वीको सतीशून्य करनेके लिए ही उद्यत हो रहे हो। शीघ्र ही रत्नालङ्कारोंको लौटा दो, नहीं तो यहीं पर आर्या जटिलाको बुलाती हूँ॥"३२॥

धूर्त्ता सखी ते ललिते! स्वकृत्ये
दक्षावहित्थामधुना ललम्बे।
मामानयत् प्रेष्य पतिं बलाद् या
मञ्जूषिकान्तः कुतुकाद् वसन्तम्॥३३॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण बोले—"देखो ललिते! तुम्हारी सखी राधा अत्यन्त धूर्त्त है तथा अपना कार्य साधनेमें बहुत निपुण है। मैंने कौतूहलवशतः इस पेटिकामें प्रवेश किया था, तुम्हारी सखी अपने पतिके द्वारा बलपूर्वक मुझे यहाँ लायी है और अब उस बातको तुमलोगोंसे छिपा रही है॥"३३॥

मञ्जूषायाः सौरभं वीक्ष्य तस्या
वस्तूदस्य प्रापयंस्तां धनिष्ठाम्।
तत्र प्रीत्या प्राविशं स्वं सुगन्धी–
कर्त्तुं दैवादानयन्मां पतिस्ते॥३४॥

भावानुवाद—तत्पश्चात् श्रीकृष्ण श्रीराधिकासे कहने लगे—"हे राधे! मैंने इस पेटिकाके सौरभका आस्वादन करके इसके भीतर रखे द्रव्योंको धनिष्ठा द्वारा तुम्हारे पास भेजकर प्रीतिवशतः इस पेटिकामें अपनी देहको सुगन्धित करनेके लिए प्रवेश किया ही था कि उसी समय दैववशतः तुम्हारा पति मुझे यहाँ ले आया॥"३४॥

न्यायं सख्यो नौ कुरुध्वं यदस्या
दोषः स्याच्चेदस्तु दण्ड्या ममेयम्।
नोचेद् युष्मद्दोर्भुजङ्गोग्रपाशै–
र्बद्धःस्थास्याम्यत्र ताम्यं स्त्रिरात्रम्॥३५॥

भावानुवाद—तदनन्तर सखियोंसे कहने लगे—"हे सखियो! मैं तुम लोगोंसे इस विषयमें नालिश (अभियोग) कर रहा हूँ—तुमलोग उस पर विचार करो। देखो, यदि श्रीराधाका दोष हो, तो मैं श्रीराधिकाको दण्ड दूँगा और यदि मेरा दोष है, तो तुमलोगोंके बाहुरूप सर्पके उग्रपाशमें बद्ध होकर यहीं तीन रातें दुःखके साथ बिताऊँगा॥"३५॥

यस्यैवं विभवेन तन्नवयुवद्वन्द्वं स्फुरद् यौवनं
सख्याल्यक्षि–चकोरिकाः शरततिं कामोरसः स्वादनाम्।
ध्यानं भक्ततति: सदा कविकुलं स्वीया विचित्रा गिरः
कीर्त्तिं क्ष्मा भुवनेषु साधु सफलीचक्रे नुमस्तत्परम्॥३६॥

भावानुवाद—जिन युगलकिशोरके ऐसे वैभवके द्वारा सखियोंने अपने नयन–चकोरको, कामने अपने बाणोंको, रसने आस्वादनको, भक्तोंने ध्यानको, कवियोंने अपनी विचित्र–विचित्र वाणियोंको तथा चौदह भुवनोंमें इस भौम वृन्दावन अथवा पृथ्वीने अपनी कीर्त्तिको उत्तम रूपसे सफल किया है—वैसे विलास–परायण तथा नित्य–यौवन अथवा व्यक्त–कैशोर व्रजनव–युगल श्रीश्रीराधाकृष्णको हम प्रणाम करते हैं॥३६॥

द्वितीय कौतूहल

प्रातः पतङ्गतनया मनया पदव्या
स्नानाय याति किमियं वृषभानु पुत्री।
इत्याकुलैव कुटिला व्रजराजवेश्म
कृष्णं विलोकितुमगान्मिषतोऽति मन्दा॥१॥

भावानुवाद—एक समय माघ मासमें श्रीराधा नियमपूर्वक प्रातः यमुना-स्नानके लिए जाया करती थीं, इससे कुटिलाके मनमें सन्देह उत्पन्न हो गया। एक दिन श्रीराधा जब स्नान करनेके लिए घरसे बाहर निकली, तब पीछेसे कुटिला भी कोई बहाना बनाकर नन्दालयमें श्रीकृष्ण हैं या नहीं—यह जाननेके लिए उत्सुक होकर श्रीव्रजराजके महलमें गयी। अर्थात् वृषभानुकुमारी श्रीराधा इस रास्तेसे यमुनामें प्रातः स्नानके लिए जाती है या नहीं—यह जाननेके लिए तथा आकुल चित्तसे कृष्णका दर्शन करनेके लिए अति मन्दमति कुटिला किसी छलसे व्रजराजके भवनमें गयी॥१॥

स्नातुं स चापि निजमातुरनुज्ञयैव
तद् यामुनं तटमगादिति सम्विदाना।
गन्तुं तदीय पदलक्ष्मदिशैच्छदेषा
तत्रैव यत्र स तया सुविलालसाति॥२॥

भावानुवाद—कुटिलाको परिजनोंके द्वारा पता चला कि श्रीकृष्ण भी माँ यशोदाकी आज्ञानुसार स्नान करनेके लिए गये हैं। यह सुनकर कुटिलाका सन्देह और भी बढ़ गया। तब कुटिलाने श्रीकृष्णके असाधारण पद-चिह्नोंका अनुसरण किया तथा जिस स्थानपर श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ सुन्दर-सुन्दर विलासादि करते हैं, वहाँ जानेकी इच्छासे अग्रसर हुई॥२॥

अत्रान्तरे सहचरी तुलसी प्रविश्य
कुञ्जं विलोक्य ललितादि सखी-समेताम्।

राधां प्रियेण सह हास विलास लीला–
लावण्यमज्जित–हृदं मुमुदेऽवदच्च ॥३ ॥

भावानुवाद—कुटिलाको निकुञ्जके निकट आते देख तुलसी नामकी श्रीराधाकी सहचरीने कुञ्जमें प्रवेश करके देखा कि श्रीराधा ललितादि सखियोंसे परिवेष्टित होकर (घिरकर) प्रियतमके साथ हास–विलास–लीला–लावण्यमें मग्न–चित्त हो रही हैं। उस विलासका दर्शन करके तुलसी अत्यन्त आनन्दित होकर कहने लगी— ॥३ ॥

भो भोः प्रसूनधनुषो जनुषोऽतिभाग्य–
विख्यापनाय यदिमं महमातनुध्वे!
तत् साम्प्रतं शृणुत साम्प्रतमेनमेव
द्रष्टुं व्रजाल्लघुतरं कुटिला समेति ॥४ ॥

भावानुवाद—अरी–अरी गोपियो! कुसुम–धनुष अर्थात् कामदेवके जन्मको अत्यधिक सफल करनेके लिए तुम सबने जो यह महोत्सव आरम्भ किया है, उसके सम्बन्धमें इस समय एक बात सुनो—इस सुन्दर उत्सवका दर्शन करनेके लिए कुटिला मन्दगतिसे व्रजसे इसी ओर आ रही है। वह अब यहाँ पहुँचने ही वाली है॥४॥

सा क्व क्व हन्त! कथयेति सशङ्कनेत्रं
प्रत्याशमालिभिरियं निजगाद पृष्टा।
सट्टीकराटविमसौ समया व्यलोकि
तर्ह्येव सम्प्रति तु वोऽन्तिकमप्युपागात् ॥५ ॥

भावानुवाद—यह सुनकर सब सखियाँ "हाय! हाय! वह कहाँ है? बोलो–बोलो"—ऐसा कहती हुई सशङ्क नेत्रोंसे प्रत्येक दिशामें देखती हुई तुलसीसे पूछने लगीं। तुलसीने कहा—मैंने उस समय उसे छट्टीकरा (शकटीकरा) वनके समीप देखा था, लगता है वह इस समय इस स्थानके समीप ही कहीं होगी॥५ ॥

प्रोचे हरिः क्षणमुदर्कमिहैव कुञ्जे
स्थित्वालयः कलयताहमितो जिहानः।

तां वञ्चयन् प्रतिभया रचिताऽभिमन्यु–
वेशः कुतूहलमितोऽप्यधिकं विधास्ये॥६॥

भावानुवाद—यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—हे सखियो! तुमलोग इसी कुञ्जमें क्षणकाल रहकर उदर्क अर्थात् सूर्योदय अथवा भावी–फलका दर्शन करो। मैं यहाँसे निकलकर अभिमन्युका वेश धारण करके अपनी प्रतिभासे कुटिलाको ठगकर इसकी तुलनामें और अधिक कौतुकका विस्तार करूँगा॥६॥

इत्युक्त्वा रहसि प्रविश्य विपिनाधीशात्ततत्तत् पृथङ्
नेपथ्याः पिहित स्वलक्ष्म निचयः कण्ठस्वरं तं श्रयन्।
निष्क्रम्याणुससार तां सृतिमयं साऽऽयाति दूराद् यया
नार्थे हन्त! विचक्षणः क्व नु भवेन्नानाकला–कोविदः॥७॥

भावानुवाद—यह कहकर श्रीकृष्ण किसी निकुञ्जमें प्रवेश कर गये तथा वनदेवी वृन्दासे अभिमन्युके वेशोपयोगी विभिन्न सामग्रियोंको ग्रहण किया। उनके द्वारा अपने चिह्नोंको ढका तथा अभिमन्युका वेशधारणकर उसीके समान कण्ठ–स्वर करते हुए कुञ्जसे बाहर आ गये। तदन्तर वह कुटिला जिस पथसे आ रही थी, उसी पथ पर चल पड़े। अहो! विविध कलाओंमें निपुण व्यक्ति क्या कहीं भी अपने कार्यको साधनेमें विचक्षण नहीं होता अर्थात् अवश्य होता है॥७॥

कस्मात्त्वं कुटिले! व्रजाद् भ्रमसि किं वध्वा इहान्वेषणा
यायाता क्व नु सार्कजापसु मकर–स्नानं मिषं कुर्वती।
अत्रैवास्ति गता क्वचित् क्व रमणीचौरः स चाप्यागतः
स्नातुं भ्रातरतोऽन्वयास्मि गमिता कुर्वे किमाज्ञापय॥८॥

भावानुवाद—अभिमन्युवेशी श्रीकृष्ण कुछ दूर अग्रसर होनेपर कुटिलासे मिले और बोले—कुटिले! इस समय तुम व्रजमें भ्रमण क्यों कर रही हो?

कुटिला—वधूको ढूँढ़नेके लिए यहाँ आयी हूँ।

श्रीकृष्ण—वह क्या यहाँ आयी है?

कुटिला—यमुनामें मकर-स्नानके बहानेसे जाकर वह यहीं किसी स्थानपर आयी है।

श्रीकृष्ण—वह रमणी-चोर कहाँ है?

कुटिला—वह भी स्नान करनेके लिए इधर ही आया है। इसीलिए माताजीने मुझे यह सब वृत्तान्त जाननेके लिए भेजा है। अब मैं क्या करूँ? बतलाओ॥८॥

यद्यप्यद्य परिच्युतो मम वृषो नव्यो हले योजना–
दन्वेष्टुं तमिहागतोऽस्मि तदपि स्वल्पैव सा हृद्व्यथा।
मद्दारेष्वपि लम्पटत्वमिति यत् सोढ्युं किमेतत् क्षमे
गत्वा कंसमितः फलं तदुचितं दास्यामि तस्मै स्वसः॥९॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण—हे बहन! आज मेरा एक नया बैल खेत जोतते समय हलसे निकलकर भाग गया है, मैं उसे खोजते हुए यहाँ आया हूँ। नया बैल चोरी होनेपर भी मेरे हृदयमें इतना दुःख नहीं है, किन्तु वह रमणी-चोर मेरी पत्नीके प्रति भी लाम्पट्य प्रकट करता है—इससे जो अत्यधिक पीड़ा होती है, उसे क्या कोई सहन कर सकता है? अतएव इसी समय मथुरामें महाराज कंसके निकट जाकर उसे उचित दण्ड दिलवाऊँगा॥९॥

युक्तिं कामपि मे शृणु प्रथमतो निह्नुत्य तिष्ठाम्यहं
कुञ्जेऽस्मिन् परितस्त्वयाऽत्र रभसादन्विष्यतां राधिका।
सा कृष्णेन विनास्ति चेदिह मिषेणानीयतां सोऽपि चेद
आस्तेऽलक्षितमेव तत्र नय मां वीक्ष्यैव तं दूरतः॥१०॥

भावानुवाद—सर्वप्रथम तुम मेरी एक युक्ति सुनो। मैं इस कुञ्जमें छिप जाता हूँ, तुम शीघ्र ही राधिकाको इधर-उधर खोजो। यदि वह कृष्णके बिना अकेली मिल जाय, तो उसे छलपूर्वक इस कुञ्जमें ले आना और यदि वह कृष्णके निकट हो, तो उसे दूरसे ही देखकर मुझे अलक्षित भावसे उस जगह ले चलना॥१०॥

भ्रामं भ्रामं फणि ह्रद तटाद्वीक्ष्य वीक्ष्यैव कुञ्जा
नन्तः प्रोद्यतत्कुटिलिम–धुरा केशितीर्थोपकण्ठे।

पुष्पोद्यानेऽमल-परिमलां कीर्त्तिदा-कीर्त्तिवल्लीं
प्रापालीनां ततिभिरभितः सेव्यमानां शनैः सा ॥११॥

भावानुवाद—इस बातको सुनकर अत्यन्त कुटिल स्वभाववाली कुटिला कालियह्रदसे आरम्भ करके प्रत्येक कुञ्जमें ढूँढ़ती-ढूँढ़ती केशीघाटके निकट एक पुष्पोद्यानमें आयी। वहाँ उसने देखा कि विमल-परिमल-शालिनी कीर्त्तिदा-कीर्त्तिवल्ली (अर्थात् निर्मल सुगन्धसे युक्त तथा कीर्त्तिदाकी कीर्त्तिको बढ़ानेवाली लताके समान) श्रीराधा सखियोंसे परिवेष्टित (घिरी हुई) है और सखियाँ धीरे-धीरे उसकी सेवा कर रही हैं॥११॥

किं स्नातुमेषि कुटिले! नहि तत् किमर्थं
युष्मच्चरित्रमवगन्तुमिहान्वगच्छम् ।
ज्ञातं तदाशु ललिते! वद तद् ब्रवीमि
किन्वाऽत्र वक्ति निखिलं हरिगन्ध एव॥१२॥

भावानुवाद—ललिताने कुटिलाको वहाँ आयी देखकर पूछा—हे कुटिले! क्या तुम स्नान करनेके लिए आयी हो?

कुटिला—नहीं।

ललिता—तो फिर किसलिए आयी हो?

कुटिला—तुमलोगोंके चरित्रको जाननेके लिए आयी हूँ।

ललिता—ठीक है, जान लो।

कुटिला—हे ललिते! मैं सब कुछ समझ गयी हूँ।

ललिता—समझ गयी हो? जरा अपने मुखसे मुझे भी तो बतलाओ क्या समझ गयी हो?

कुटिला—मैं और क्या बतलाऊँ? 'हरि' की गन्धने ही सब कुछ बतला दिया है॥१२॥

सिंहस्य गन्धमपि वेत्सि स चेदिहास्ति
निह्नुत्य कुत्रचन, तद्विभिमोऽति मुग्धाः।
तूर्णं पलाय तदितो गृहमेव यामः
स्नेहं व्यधा स्त्वममलं यदिहैवमागाः॥१३॥

भावानुवाद—ललिता 'हरि' शब्दका 'सिंह' अर्थ ग्रहण करके बोली—कुटिले! यदि तुमने सिंहकी गन्धको पा लिया है, तो अवश्य ही सिंह किसी स्थानपर छिपा होगा। हमलोग तो अति मुग्ध (भोली-भाली) अबला हैं, अतएव बड़ी भयभीत हो रही हैं। अब यहाँसे भागकर शीघ्र ही घर जा रही हैं। तुमने इस स्थानपर इस प्रकारसे आकर हमारे प्रति विमल स्नेह ही प्रकट किया है॥१३॥

यास्यन्ति गेहमयि धर्मरता भवत्यः
कीर्त्तिं वनेषु विरचय कुलद्वयस्य।
किन्त्वग्रतो य इह राजति नीपकुञ्ज
स्तद्द्वारमुद्घटयतास्मि दिदृक्षुरेतम्॥१४॥

भावानुवाद—कुटिला क्रोधसे भरकर बोली—अरी! धर्मपरायण सखियो! तुमलोग वन-वनमें दोनों कुलोंकी कीर्त्तिकी घोषणा करके ही घर जाओगी। किन्तु सामने जो नीप अथवा कदम्बका कुञ्ज है, उसके द्वारको खोलो, मैं उसके भीतर देखना चाहती हूँ॥१४॥

एतत् कयाऽपि वनदेवतया स्ववेश्म
रुद्धा गतं शरशलाक-कवाटिकाभ्याम्।
का नाम साहसवती परकीय गेह-
द्वारं विनुद्य बत दोषमशेषमिच्छेत्॥१५॥

भावानुवाद—ललिता—कोई वनदेवता अपने निकुञ्ज-गृहका द्वार शर-शलाका (कुशके तीलेसे) निर्मित कपाट द्वारा बन्दकर किसी अन्य स्थानपर चला गया है। अतएव इस कदम्ब-कुञ्जके द्वारको खोलना युक्तिसङ्गत नहीं है। कौनसी ऐसी साहसवती नारी है, जो दूसरेके घरका द्वार खोलकर सम्पूर्ण दोष ग्रहण करनेका प्रयास करेगी?॥१५॥

सत्यं ब्रवीषि ललिते! कुलजाऽसि मुग्धा
नैवाविशः परगृहं जनुषोऽपि मध्ये।
किन्तु प्रवेशयसि भोः स्वगृहं परं यत्
तच्छास्त्र पाठनकृते त्वमिहावतीर्णा॥१६॥

इत्युक्त्वारुणितेक्षणा द्रुतमियं गत्वा कुटीरान्तिकं
भित्वा पुष्प कवाटिकामतिजवादन्तः प्रविश्य स्फुटम्।
दृष्ट्वा कौसुमतल्पमत्र च हरेर्माल्यं तथा राधिका—
हारञ्च त्रुटितं प्रगृह्य रभसादगाराद् बहिः॥१७॥

भावानुवाद—कुटिला—ललिते! तुमने सत्य ही कहा है! तुम भोली-भाली कुलकन्या हो! इस जन्ममें ही तुमने कभी दूसरेके घरमें प्रवेश नहीं किया। किन्तु अपने घरमें पर-पुरुषको प्रवेश कराना अच्छी तरहसे जानती हो और कुलनारियोंके घरमें पर-पुरुषका प्रवेश कराना जिस शास्त्रमें लिखा है, उसी शास्त्रको पढ़ानेके लिए तुम पृथ्वीपर अवतीर्ण हुई हो।

कुटिला क्रोधसे लाल नेत्र करके ऐसी बातोंको कहती हुई अति शीघ्र गतिसे कुञ्ज-कुटीरके समीप आयी तथा वेगपूर्वक पदाघात करके शर-शलाकोंसे बनी हुई पुष्प-कपाटिकाको तोड़कर भीतर प्रवेश कर गयी। वहाँ साक्षात् रूपसे कुसुम-शय्यापर श्रीहरिकी माला तथा श्रीराधाका टूटा हुआ मुक्ताहार देखकर उन दोनों वस्तुओंको लेकर शीघ्र ही बाहर आ गयी॥१६-१७॥

माघस्नानमिदं यथा विधिकृतं पुण्यं तथोपार्जितं
पुतं येन कुलद्वयं रविसुतातीरे रविश्चार्चितः।
तद् यूयं ललिते! यियासथ गृहं किंवात्र रात्रिन्दिवं
धर्मं कर्त्तुमभीप्सथेति वद मे श्रोत्रं समुत्कण्ठते॥१८॥

भावानुवाद—तब कुटिलाने ललिताको उन दोनों वस्तुओंको दिखाकर कहा—ललिते! तुमलोग जिस प्रकारसे माघ-स्नान व्रतका आचरण कर रही हो, उसी प्रकारसे पुण्य भी उपार्जित कर रही हो—जिससे तुमलोगोंने अपने दोनों कुलों अर्थात् पितृकुल और श्वसुरकुलको पवित्र कर दिया है। आहा! इस यमुनाके तटपर तुमलोग ही यथाविधि सूर्यदेवकी पूजा कर रही हो। अब यह तो बतलाओ कि तुमलोग क्या घर लौटना चाहती हो अथवा इसी स्थानपर रहकर दिन-रात धर्मोपार्जन करना चाहती हो? मेरे कान यह सुननेके लिए बड़े ही उत्कण्ठित हो रहे हैं॥१८॥

किं कुप्यसीह कुटिले! न ममैष हारो
भ्रातुस्तवैव शपथं करवै प्रसीद।
इत्युक्तवत्यमल चन्द्रमुखी सकम्प-
शीर्षं सहुंकृति कटु भ्रुतया ततर्जे॥१९॥

भावानुवाद—कुटिलाकी व्यङ्गोक्तिको सुनकर विमल चन्द्रके समान मुखवाली श्रीराधाने कहा—"कुटिले! तुम क्यों व्यर्थ ही क्रोध कर रही हो? यह हार मेरा नहीं है, तुम्हारे भैयाकी शपथ लेकर कहती हूँ, तुम प्रसन्न हो जाओ।" तदनन्तर श्रीराधा अपना सिर हिलाकर हुङ्कार करती हुई विकट भ्रू-भङ्गिपूर्वक तर्जन (क्रोध) करने लगी॥१९॥

नेतः प्रयास्यत गृहं यदि न प्रयात
राज्यं कुरुध्वमिह तावदहन्तु यामि।
तां मातरं भगवतीमपि हारमाल्ये
सन्दर्श्य युष्मदुचितेष्ट-विधौ यतिष्ये॥२०॥

भावानुवाद—उस समय कुटिलाने कहा—यदि तुमलोगोंकी घर जानेकी इच्छा नहीं है, तो अब फिर मत जाओ—तुमलोग इसी वनमें ही राज्य-विस्तार करती रहो, किन्तु मैं घर जा रही हूँ। मैं अपनी माँ और भगवती पौर्णमासीको यह हार तथा माला दिखाकर तुम्हारे लिए समुचित दण्डकी व्यवस्था करती हूँ॥२०॥

कामं प्रयाहि कुटिले! कटु किं ब्रवीषि
हारं प्रदर्शय गृहं गृहमेव सर्वाः।
नास्माकमेष यदतो न विभेमि किञ्चन्
मिथ्याप्रवादमपि नो न कदा ददासि॥२१॥

भावानुवाद—श्रीराधा—कुटिले! तुम स्वच्छन्दतापूर्वक जाओ। किन्तु तुम कड़वे वचन क्यों सुना रही हो? घर-घरमें जाकर सभीको यह हार दिखाना। यह हार जब मेरा है ही नहीं, तो मुझे लेशमात्र भी डर नहीं है। देखो! कभी भी हमारे विरुद्ध मिथ्या आरोप मत लगाना॥२१॥

सा क्रुद्धा द्रुतमेव गोष्ठगमनं स्वस्य प्रदर्श्यैव ता
यत्रास्ते हरि राजगाम शनकैस्तत्रैव निह्नुत्य सा।
भ्रातर्माल्यमघद्विषः कलय भो वध्वाश्च हारं मया
प्राप्तं सौरत–तल्पगं रहसि ता दृष्टाः स नालोकितः॥२२॥

भावानुवाद—तदनन्तर कुटिला क्रोधित होकर मानों गोष्ठकी ओर जा रही हो, यह भाव दिखलाकर तीव्र गतिसे अभिमन्यु–वेशधारी श्रीहरिके निकट गयी तथा धीरे–धीरे अति गोपन भावसे कहने लगी—"अरे भैया! अघारि श्रीकृष्णकी इस मालाको देखो और बहूका टूटा हुआ मुक्ताहार भी देखो, जिन्हें मैंने सौरत–शय्यासे प्राप्त किया है। राधिका आदिको तो मैंने निर्जन स्थानमें देखा था, किन्तु वह रमणी–चोर मुझे कहीं भी दिखायी नहीं पड़ा॥"२२॥

भद्रं भद्रमिदं बभूव मथुरां गच्छामि तूर्णं भगि–
न्येतावद्द्वयमेव लम्बनमभूद् विज्ञापने राजनि।
किन्तु स्वीय गृहस्य वक्तुमुचितो न स्यात् कलङ्को महां
स्तस्मिन् वृष्णि सदस्यतश्चतुरिमाम्नातव्य एको मया॥२३॥

भावानुवाद—तब अभिमन्यु–वेशधारी श्रीकृष्ण बोले—अरी बहन! अच्छा ही हुआ! मैं शीघ्र ही मथुरा जा रहा हूँ। यह टूटा हार तथा माला दोनों ही मुझे दो। मैं इन्हें दिखलाकर राजासे निवेदन करूँगा, जिससे राजा मेरी बातोंपर विश्वास करेगा। किन्तु, अपने घरका यह महा–कलङ्क प्रकाशित करना उचित नहीं होगा। अतएव यदुसभामें एक चतुराई प्रकाशित करूँगा॥२३॥

गोवर्द्धनं प्रियसखं प्रतिवाच्यमेत–
च्चन्द्रावलीमपि भवद्–गृहिणीं निकुञ्जे।
आनीय दूषयति नन्दसुतस्तदेतद्
वस्तुद्वयं कलय तन्मिथुनस्य लब्धम्॥२४॥

भावानुवाद—वह चतुराई यह है कि मैं स्वयं राजाके निकट न जाकर अपने प्रिय सखा गोवर्धन मल्लके निकट निवेदन करूँगा—"हे

प्रिय बन्धो! नन्दनन्दनने तुम्हारी गृहिणी (पत्नी) चन्द्रावलीको निकुञ्जमें बुलाकर उसे दूषित किया है। उनका टूटा हुआ हार तथा माला मुझे प्राप्त हुए हैं—यह देखो॥"२४॥

इत्थं लम्पटतां व्रजे प्रतिगृहं दृष्ट्वेव तस्याधिकां
त्वामाज्ञापयमद्य तत्त्वमधुना विज्ञाप्य राज्ञि द्रुतम्।
पत्तीनां शतमश्ववार दशकं प्रेष्यैव नन्दीश्वरान्
नन्दं सात्मजमानयन् मधुपुरीं तं तत् फलं प्रापय॥२५॥

भावानुवाद—देखो सखे! आज जिस प्रकार कृष्णने तुम्हारी गृहिणीके प्रति लम्पटता की है, उसी प्रकार प्रत्येक गृहमें उसकी लम्पटता अधिक परिमाणमें बढ़ती जा रही है—ऐसा देखकर ही मैंने तुम्हें बतलाया है। तुम राजा कंसके निकट निवेदन करके एक सौ पैदल सेना तथा दस घुड़सवार सेना भेजकर नन्दग्रामसे पुत्रके साथ नन्दको भी बाँधकर मथुरा लाकर उन्हें दण्ड दिलवाओ॥२५॥

इत्युक्त्वैव मया पुनः स्वभवनं पूर्वाह्न एवैष्यते
मध्याह्ने खलु राजकीय–पुरुषा यास्यन्ति ते तु व्रजम्।
त्वं गत्वा गृह एव मातृसहिता तिष्ठेरिति प्रोचिवान्
कृष्णो दक्षिणादिङ्मुखोऽव्रजदथो सा ताश्च वेश्माययुः॥२६॥

भावानुवाद—गोवर्धन मल्लसे ऐसा कहकर मैं पूर्वाह्नमें ही लौट आऊँगा, क्योंकि मध्याह्न कालमें राजकीय सेना व्रजमें पहुँच जायेगी। तुम घर जाकर माताके पास ही रहना। अभिमन्यु–वेशधारी श्रीकृष्ण इस बातको कुटिलासे कहकर दक्षिणकी ओर उन्मुख होकर मथुराकी ओर अग्रसर हुए। तदनन्तर कुटिला तथा गोपियाँ भी अपने–अपने घर लौट गयी॥२६॥

कृष्णो विलम्ब्य घटिकात्रयतोऽथ तादृग्–
वेशः स्वयं स जटिला गृहमाससाद।
भोः क्वासि मात रयि भो कुटिले! समेत्य
जानीहि वृत्तमिति ते प्रति किञ्चिदूचे॥२७॥

भावानुवाद—अभिमन्युवेशमें श्रीकृष्ण किसी स्थानपर तीन घड़ी समय व्यतीत करके स्वयं उसी वेशमें जटिलाके घरमें आकर उच्च स्वरसे बोले—हे मातः! तुम कहाँ हो? हे कुटिले! कहाँ हो? तुमलोग यहाँ आकर एक बात सुनो॥२७॥

विज्ञापितः स नृपतिः प्रजिघाय यद् यद्
द्रागश्ववार–दशकं तदिहैति दूरे।
किन्त्वत्र लम्पटवरो धृत–मत्–स्वरूपो
मद्गेहमेति तदलक्षित आगतोऽस्मि॥२८॥

भावानुवाद—उन दोनोंके निकट आनेपर अभिमन्यु-वेशधारी श्रीकृष्णने कहा—मैंने राजा कंसको सब कुछ बतला दिया है। उन्होंने दस जनोंकी घुड़सवार सेनाको भेज दिया है, वे शीघ्र ही आ रहे हैं। किन्तु वह लम्पट मेरा वेश धारण करके मेरे ही घर आ रहा है, इसलिए मैं छिपकर घरपर ही रहूँगा॥२८॥

बहिर्द्वारं रुद्ध्वा भगिनि! सह मात्रा द्रुतमितः
समारुह्यैवाट्टं कलय तरुणी लम्पट–पथम्।
तमेष्यन्तं तर्जन्त्यतिकटुगिरा तिष्ठ सुचिरं
वधूं रुन्धन् वर्त्ते तलसदन एवाहमधुना॥२९॥

भावानुवाद—हे बहिन! तुम बाहरके द्वारको बन्द करके शीघ्र ही माताके साथ अट्टालिकाके ऊपर चढ़कर उस तरुणी-लम्पटका रास्ता देखती रहो। उसके आते ही अति कटु वचनोंसे उसका तिरस्कार करना। मैं तब तक तुम्हारी बहूको रोककर नीचेके कक्षमें प्रतीक्षा करूँगा॥२९॥

अथायान्तं दृष्ट्वा त्वरितमभिमन्युं कटु रट–
न्त्यरे धर्मध्वंसिन् व्रजकुलभुवां किं नु यतसे।
प्रवेष्टुं मद् भ्रातूर्भवन मयि लोष्ट्रालिभिरितः
शिरो भिन्दन्ती ते बत चपल दास्ये प्रतिफलम्॥३०॥

भावानुवाद—तदनन्तर श्रीकृष्ण श्रीराधिकाके निकट तल भवनमें चले गये। थोड़ी ही देरमें अभिमन्युके अपने घरके समीप आनेपर कुटिला उसे देखकर कटु भाषामें कहने लगी—अरे! व्रजकुलकी रमणियोंके धर्मध्वंसि! क्या तू मेरे भाईके घरमें भी प्रवेश करनेके लिए प्रवृत्त हुआ है? अरे! चञ्चल! देख, इस ओर आया तो इस पत्थरके ढेलेसे तेरा सिर फोड़कर तुझे इसका समुचित फल प्रदान करूँगी॥३०॥

तवान्यायं श्रुत्वा कुपितमनसः कंस नृपते—
र्भटा आयान्त्यद्धा सपितृकमपि त्वां सुखयितुम्।
यदा कारागारे नृपति—नगरेस्थास्यसि चिरं
निरुद्धस्तर्हि त्वच्चपलतरता यास्यति शमम्॥३१॥

भावानुवाद—तेरे दुराचारकी बात सुनकर राजा कंसने क्रोधित होकर तेरे पिताके साथ तुझे सुखी करनेके लिए राज-सेनाको भेज दिया है, वह शीघ्र ही आती होगी। जब वे तुझे राजधानी मथुरामें ले जाकर जीवन भरके लिए कारागारमें बन्द करके रखेंगे, तभी तेरी यह चञ्चलता शान्त होगी॥३१॥

इति श्रुत्वा जल्पं विकलमभिमन्युः कथमहो
स्वसारं मे प्रेतोऽलगदहह कश्चित् कटुतरः।
तदानेतुं यामि त्वरितमिह तन्मान्त्रिक—जना—
निति ग्रामोपान्तं वितत—बहुचिन्तः स गतवान्॥३२॥

भावानुवाद—इस प्रकार अपनी बहिनकी अटपटी बातोंको सुनकर अभिमन्यु अत्यन्त घबड़ाकर सोचने लगा—हाय! हाय! मेरी बहनको भयङ्कर प्रेतने किस प्रकार पकड़ लिया है? अतएव अब शीघ्र ही मान्त्रिक (मन्त्र-तन्त्र-ज्ञाता) अथवा ओझाको बुलाना ही युक्तियुक्त है। ऐसा निश्चित करके तथा नाना प्रकारकी चिन्ताओंसे व्याकुल होकर अभिमन्यु गाँवकी अन्तिम सीमापर चला गया॥३२॥

एवं हरि स जटिला गृह एव तस्या
वध्वा सहारमत चित्र—चरित्र रत्नः।

यत्नः क एव फलवत्त्वमगान्न तस्य
किम्वा फलं परवधूरमणादृतेऽस्य॥३३॥

भावानुवाद—इस प्रकार वे चित्र-विचित्ररूप रत्नधारी श्रीहरि जटिलाके घरमें ही उसीकी वधूके साथ अनेक प्रकारके विलासमें प्रवृत्त हो गये। जिन्हें परवधू-रमणके अलावा अन्य कोई भी कार्य नहीं है, उन श्रीकृष्णका कौन-सा ऐसा प्रयास है, जो सफल न हो अर्थात् उनकी सभी चेष्टाएँ ही फल-प्रदायिनी होती हैं॥३३॥

तीसरा कौतूहल

अथैकदा सा जटिला विविक्ते
चिन्तातुरा किञ्चिदुवाच पुत्रीं।
न रक्षितुं हा प्रभवामि कृष्णाद्
वधूं ततः किं करवाण्युपायम्॥१॥

भावानुवाद—श्रीराधाके नाना प्रकारके श्रीकृष्ण-अनुरागके लक्षणोंसे अवगत होकर जटिला एक दिन अत्यन्त चिन्तातुर होकर अपनी पुत्री कुटिलाको एकान्तमें बुलाकर कहने लगी—देखो पुत्री! अब मैं कृष्णसे अपनी पुत्रवधूकी और रक्षा नहीं कर पा रही हूँ, अतः अब क्या उपाय किया जाय?॥१॥

त्वं पुत्रि! तस्माद् गृह एव रुन्धि
वधूं बहिर्याति कदापि नेयम्।
यथा यथायाति हरिर्नगेहं
तथा तथा हा भव सावधाना॥२॥

भावानुवाद—पुत्री! कुटिले! एक उपाय बतलाती हूँ, पुत्रवधूको इस तरह रोका जाय कि वे किसी भी प्रकारसे घरसे बाहर न जा सके। कृष्ण भी किसी प्रकारसे हमारे घरमें प्रवेश न कर सके, इस विषयमें भी तुम सब प्रकारसे सदा सावधान रहो॥२॥

मातः भवत्या न वधूर्निरोद्धुं
शक्या यतः प्रत्यहमेव यत्नात्।
व्रजेश्वरी भोजयितुं स्वपुत्रं
पाकार्थमेतां नयति स्वगेहम्॥३॥

भावानुवाद—माताकी बात सुनकर कुटिला बोली—माँ! तुम्हारी बहूको किसी भी प्रकारसे रोका नहीं जा सकता, क्योंकि व्रजेश्वरी (श्रीयशोदा) प्रतिदिन ही अपने पुत्रके लिए भोजन बनवानेके लिए

तुम्हारी बहूको यत्नपूर्वक अपने घर बुलवा लेती हैं। अतः उसे कैसे रोका जाय? ॥३॥

पुत्रि! त्वमद्य व्रज तां वदैतन्
नातः परं क्वापि वधूः स्वगेहात्।
प्रयात्यतस्त्वं सुतभोजनार्थं
पाके नियुक्तां कुरु रोहिणीं ताम्॥४॥

भावानुवाद—इसके उत्तरमें जटिला बोली—पुत्री! तुम अभी व्रजेश्वरीके समीप जाकर कह दो कि आजसे हमारी बहू घरको छोड़कर कहीं नहीं जायेगी। अतएव तुम अपने पुत्रका भोजन बनवानेके लिए रोहिणीको नियुक्त कर लो॥४॥

मातस्तया वक्ष्यत एव तस्यै
दुर्वाससा कोऽपि वरो वितीर्णः।
त्वद्धस्त–पक्कौदनभोक्तुरायु–
र्निर्विघ्नमस्त्वित्यधिका प्रसिद्धिः॥५॥

भावानुवाद—तब कुटिला बोली—माँ! मेरी बात सुनकर व्रजेश्वरी कहेंगी कि श्रीराधाको दुर्वासा मुनिने एक अनिर्वचनीय वरदान दिया है। वह यह कि जो श्रीराधाके हाथसे पके हुए अन्नका भोजन करेगा, उसकी आयुकी वृद्धि होगी तथा विघ्नोंका विनाश होगा। यह बात तो व्रजमण्डलमें बहुत ही प्रसिद्ध है॥५॥

एकः सुतो मे बहु दुष्टदानवा–
द्यरिष्टवत्त्वेऽपि कुशल्यभूद् यतः।
ततस्त्वया साधितमोदनादिकं
नित्यं सुतं भोजयितुं प्रयत्स्यते॥६॥

भावानुवाद—कृष्ण मेरा एकमात्र पुत्र है, केवल श्रीराधाके हाथसे पके हुए अन्नके भोजनके प्रभावसे ही वह दुष्ट दानवोंके द्वारा दिये गये विघ्नोंसे निर्मुक्त होकर कुशलतापूर्वक रहता है। इसीलिए मैं नित्य ही राधाके द्वारा तैयार किये गये अन्नादिको अपने पुत्रको

भोजन करानेकी चेष्टा करती हूँ। तब इसके उत्तरमें मैं क्या कहूँगी? ॥६॥

पुत्रि! त्वया वाच्यमिदं परश्वः
श्वो वा स आगत्य मुनिः प्रदद्यात्।
राधा स्पृशेद् यं स चिरायुरस्त्वि–
त्येवं वरं चेदयि तर्हि किं स्यात्॥७॥

भावानुवाद—जटिला बोली—हे पुत्री! तब तुम यह कहना—हे व्रजेश्वरि! यदि मुनिवर कल अथवा परसों आकर श्रीराधाको यह वरदान दें कि श्रीराधा जिसका स्पर्श करेगी वह चिरायु होगा, तब क्या किया जायेगा—जरा बतलाइये? ॥७॥

किं स्पर्शयन्ती निजपुत्रमेता–
माकारयिष्यस्यसि नीतिविज्ञे!
कुलाङ्गना यत् पर वेश्म गत्वा
नित्यं पचेदित्यपि किं नु नीतिः॥८॥

भावानुवाद—हे नीतिविज्ञे (नीतिको जाननेवाली)! तब क्या तुम श्रीराधाको अपने घरमें बुलाकर उसके द्वारा अपने पुत्रका स्पर्श कराओगी? एक बात और है कि कुलस्त्रियोंका प्रतिदिन पर-गृहमें रसोई बनानेके लिए जाना क्या कोई नीति है? ॥८॥

वध्वाः कलङ्क प्रतिदेशमेष
भूयानभूद् यत् किमु सह्यमेतत्।
स्नेहो यथा ते निजपुत्र एवं
स्नेहो ममाप्यस्ति निज स्नूषायाम्॥९॥

भावानुवाद—अधिक क्या, बहूका महाकलङ्क व्रजमें सर्वत्र फैल गया है, क्या मैं उसे और सहन कर सकती हूँ? अपने पुत्रसे तुम्हें जितना स्नेह है, क्या बहूके प्रति मेरा वैसा स्नेह नहीं है? ॥९॥

तथापि ते प्रौढ़िरियं भवेच्चे–
द्धनिष्ठया प्रेषितयैव नित्यम्।

वधुकृतं मोदक–लड्डुकादि
त्रिसन्ध्यमेवानय पुत्र–हेतोः ॥१० ॥

भावानुवाद—और यह भी कहना—देखो, इतना सब होनेपर भी यदि तुम अत्यधिक हठ करती हो और मेरी पुत्रवधूके हाथसे ही पके द्रव्योंको अपने पुत्रको भोजन करानेकी नितान्त अभिलाषा करती हो, तब प्रतिदिन तीनों समय धनिष्ठाको मेरे घरपर ही भेजकर अपने पुत्रके लिए मेरी वधू द्वारा बने हुए मोदक तथा लड्डु मँगवा लिया करें॥१०॥

इत्येवमुक्तेऽपि यदि व्रजेशा
कुप्येत्तदा तन्नगरीं विहाय।
कृत्वैव देशान्तर एव वासं
वधुमविष्यामि तदीय पुत्रात्॥११॥

एवं निरोधे सति तौ विषण्णौ
परस्परादर्शन–दाव–तापितौ ।
बभूवतुर्हन्त! यथा तथा स्वयं
सरस्वती वर्णयितुं क्षमेत किम्॥१२॥

भावानुवाद—इस प्रकारसे सारी बातें समझा देनेपर भी यदि व्रजेश्वरी क्रोध करें, तो हम उनकी नगरीका त्याग करके अन्य स्थानपर चली जायेंगी। जिस किसी भी उपायसे मैं उनके लम्पट पुत्रसे वधूकी रक्षा करना चाहती हूँ। जटिला और कुटिलाने इस प्रकार परामर्शकर श्रीराधाको घरमें बन्द कर दिया। इस प्रकार श्रीराधाके श्रीकृष्णके साथ मिलनेके सारे रास्ते (उपाय) बन्द हो गये। हाय! इस कारणवशतः वे युगल–किशोर अत्यन्त दुःखी होकर परस्पर अदर्शन रूप दावाग्निसे जिस प्रकार तापित हुए थे—उसका स्वयं सरस्वती भी वर्णन नहीं कर सकतीं॥११-१२॥

सरोजपत्रैर्विधुगन्धसार–
पङ्क–प्रलिप्तैरचितापि शय्या।

राधाङ्ग–संस्पर्शनतः क्षणेन
हा हन्त हा मुर्मुरतां प्रपेदे॥१३॥

भावानुवाद—श्रीकृष्णके विरहमें श्रीराधाके अङ्ग–तापको शान्त करनेके लिए सखियोंने पद्मपत्र (कमलकी पंखुड़ियों) और कर्पूर–चन्दनादिके लेप द्वारा शय्याकी रचना की, परन्तु श्रीराधाके विरह–तापसे तापित अङ्ग–स्पर्श मात्रसे क्षण–कालमें ही वह शय्या मुरझाकर सूख गयी॥१३॥

निन्देद् विधिं पक्ष्मकृतं भृशं या
वाञ्छेदपक्ष्मोत्तम–मीनजन्म ।
नन्दात्मजालोकमृते कथं सा
यामाष्टकं यापयितुं क्षमेत॥१४॥

नावेक्षते नापि शृणोति किञ्चिद्
अचेतना सीदति पुष्पतल्पे।
धनिष्ठयाथैत्य तथाविधा सा
व्रजेश्वरीप्रेषितया व्यलोकि॥१५॥

भावानुवाद—जो पलक झपकनेके कालको भी कृष्ण–दर्शनमें बाधा जानकर निमेष–रचयिता विधाताकी अत्यधिक निन्दा करके पलक–रहित मछलीका जन्म लेनेकी वाञ्छा करती हैं, वही श्रीराधा श्रीनन्दनन्दनके दर्शनके बिना क्या अष्ट प्रहर बिता सकेंगी? श्रीराधा कुसुम शय्यापर अचेतनावस्थामें पड़ी हुई हैं—वे किसी भी वस्तुका दर्शन नहीं करती तथा कोई भी वचन उन्हें सुनायी नहीं देता। व्रजेश्वरीके द्वारा भेजी गयी धनिष्ठाने आकर श्रीराधाकी ऐसी विरह–विह्वलताका दर्शन किया॥१४–१५॥

अद्य प्रभाते ललिते पपाच
श्रीरोहिणी कृष्णकृते यदन्नम्।
तत् प्राश्य सोऽगाद विपिनं व्रजेशा
मां प्राहिणोदत्र विषण्ण–चेताः॥१६॥

भावानुवाद—ऐसा देखकर धनिष्ठा श्रीललिताको सम्बोधित करके कहने लगीं—हे ललिते! आज सुबह श्रीराधा श्रीकृष्णके लिए रसोई करने नहीं गयी, अतः श्रीरोहिणीने ही श्रीकृष्णके लिए रसोई की। उस अन्नका भोजन करके ही श्रीकृष्ण गोचारणके लिए चले गये हैं। श्रीकृष्णको अन्य दिनोंकी भाँति रुचिसे भोजन करते न देखकर व्रजेश्वरीने अत्यन्त दुःखित मनसे मुझे यहाँ भेजा है॥१६॥

सायं रजन्यामपि यत्तथा श्वः
स भोक्ष्यते तस्य कृतेऽहमागाम्।
इयन्तु संज्ञारहितैव पक्तुं
कथं क्षमेताद्य करोमि हा किम्॥१७॥

भावानुवाद—मैं जो मोदकादि खाद्य-पदार्थोंको तैयार करवाकर ले जानेके लिए आयी हूँ, उसे आज सायंकाल, रात्रिमें तथा कल सुबह गोष्ठ-गमनके पहले तक ही श्रीकृष्ण भोजन कर लेंगे। किन्तु श्रीराधा तो अचेतन अवस्थामें ही पड़ी हुई है, हाय! ऐसी अवस्थामें वह पुनः किस प्रकारसे मोदकादि तैयार करनेमें समर्थ होगी? हा! अब मैं क्या करूँ?॥१७॥

कृष्णः पुरस्ते कलयेति तद्वाक्
तां भग्नमूर्च्छामकरोद् यदैव।
तदा धनिष्ठा सहसा व्रजेशा-
सन्दिष्टमाह स्म सरोरुहाक्षीम्॥१८॥

कटाहमात्रानय रूपमञ्जरि!
प्रलिप्य चुल्लीमिह वह्निमर्पय।
यथा व्रजेशादिशदेवमेव तत्
कृष्णस्य भक्ष्यं किल साधयाम्यहम्॥१९॥

भावानुवाद—धनिष्ठा कोई भी अन्य उपाय न देखकर श्रीराधाके कानोंमें उच्च स्वरसे बोली—"हे राधे! देखो-देखो! श्रीकृष्ण तुम्हारे सम्मुख ही खड़े हुए हैं।" यह बात कानोंमें प्रवेश करनेमात्रसे ही

श्रीराधाकी मूर्च्छा भङ्ग हो गयी और उसी समय धनिष्ठाने सहसा व्रजेश्वरी द्वारा भेजा गया श्रीकृष्णके लिए मोदकादि तैयार करनेका समाचार उस कमल नेत्रोंवाली श्रीराधाको सुना दिया। विरह-तापसे तापित होनेपर भी श्रीराधाने धनिष्ठाके मुखसे व्रजेश्वरीकी आज्ञा सुन करके मानो प्रचुर बल प्राप्त कर लिया और कहने लगी—"हे रूपमञ्जरि! शीघ्र ही चूल्हेको लीप कर उसमें अग्नि प्रज्वलित करो। यहाँ कड़ाही ले आओ। व्रजेश्वरीके आदेशानुसार श्रीकृष्णके लिए भोजन सामग्री तैयार करूँगी॥"१८-१९॥

करोमि यावत् सखि! नित्यमेतच्
चतुर्गुणं कुर्व इति ब्रुवाणा।
चुल्लीतटे दिव्य चतुष्किकायां
राधोपवेशं सहसा चकार॥२०॥

भावानुवाद—हे सखि! प्रतिदिन जिस मात्रामें मोदकादि तैयार करती हूँ, आज उससे चौगुना तैयार करूँगी। मेरी दैहिक स्वस्थताके लिए तुमलोग तनिक भी चिन्ता मत करो। ऐसा कहकर श्रीराधा सहसा चूल्हेके निकट ही दिव्य चौकीके ऊपर बैठ गयी॥२०॥

यत्स्पर्शनात् पङ्कज-पत्र-शय्या
ययौ क्षणान्मुर्मुरतां तदेव।
पक्वान्न कर्मण्यनलार्चिषैव
राधावपुः शीतलतां प्रपेदे॥२१॥

भावानुवाद—महा आश्चर्यका विषय यह है कि कुछ क्षण पूर्व श्रीराधाके शरीरके संस्पर्शसे कमल पंखुड़ियों द्वारा निर्मित शय्या मुरझाकर सूख गयी थी, किन्तु इस समय प्रियतमके लिए मिष्टान्न तैयार करनेके लिए अग्निके तापसे ही उस राधाका शरीर सुशीतल हो गया॥२१॥

प्रेमोत्तमोऽतर्क्य-विचित्रधामा
यतो जनं तापयते शशाङ्कः।

वह्निः पुनः शीतलयत्यतस्तं
तदाश्रयं वा किमु कोऽपि वेत्ति॥२२॥

भावानुवाद—उत्तम प्रेममें अचिन्त्य और विचित्र प्रभाव विद्यमान रहता है, अर्थात् सुशीतल चन्द्र जिसको ताप प्रदान करता है, अग्नि उसीको शीतलता प्रदान करती है। इसलिए ऐसे प्रेमको अथवा प्रेमाश्रित प्रेमीजनोंको क्या कभी कोई जान सकता है?॥२२॥

जगाद किञ्चिल्ललिता धनिष्ठे!
विद्युद्–घनावग्रह एष भूयान्।
समं किमेष्यत्यधुना सखीना–
मानन्द–शस्यानि विनाशमीयुः॥२३॥

भावानुवाद—तदनन्तर श्रीललिता धनिष्ठासे बोली—हे धनिष्ठे! क्या विद्युतयुक्त मेघोंसे प्रचुर वर्षा होगी? अर्थात् विद्युतलता जड़ित (बिजली चमकनेसे युक्त) नव–जलधरका उदय क्या अब नहीं होगा? उस जलधरके उदित न होनेके कारण रस वर्षणके अभावमें सखियोंकी आनन्दरूप फसल सूखकर विनष्ट होती जा रही है॥२३॥

ब्रवीषि सत्यं ललिते वयस्यैः
सह स्वयं सीदति सोऽपि कृष्णः।
वृन्दावनस्थाः शुक–केकिभृङ्ग
मृगादयोऽप्याकुलतामवापुः ॥२४॥

भावानुवाद—धनिष्ठा बोली—ललिते! सत्य ही कह रही हो—तुम्हें जिस प्रकारसे दुःख हो रहा है, सखाओंके साथ श्रीकृष्ण भी उसी प्रकार दुःखका अनुभव कर रहे हैं। अधिक क्या कहूँ, इस महा–दुःखसे वृन्दावनके शुक, मयूर, भ्रमर तथा मृगादि भी व्याकुल हो रहे हैं॥२४॥

ततश्च राधा ललितादि कर्णे
काञ्चित् कथां प्रोच्य ययौ गृहं सा।

सायं विशाखा जटिलामुपेत्या–
लीकं रुरोदाधिधरं लुण्ठन्ती ॥२५ ॥

हा किं विशाखे! किमु रोदिषि त्वं
राधां ददंशाहिरलक्ष्यरूपः।
कथं क्व वा कोलितले तदीय–
रत्ने गृहीते निज–रत्न बुद्धया ॥२६ ॥

भावानुवाद—इसके बाद मिष्टान्न (अन्न युक्त मीठा पकवान) तैयार करके श्रीराधाने धनिष्ठाके हाथोंमें प्रदान किया। श्रीराधा और ललिता आदिके कानोंमें कुछ गोपनीय बात कहकर धनिष्ठा नन्दालय चली गयी। सायंकालमें विशाखा जटिलाके निकट आकर धरतीपर लोट-पोट करती हुई झूठ-मूठ रोदन करने लगी। उसे इस प्रकार रोती हुई देखकर जटिलाने पूछा—हे विशाखे! तुम रो क्यों रही हो?

विशाखाने क्रन्दन करते हुए कहा—राधाको अलक्षित रूपसे काले-सर्पने डस लिया है।

जटिलाने घबड़ाकर पूछा—कहाँ और किस प्रकार डस लिया?

विशाखा बोली—वह सर्प बदरी-वृक्षके नीचे छिपा हुआ बैठा था। उसके मस्तकपर स्थित रत्नको भ्रमके कारण अपना रत्न समझकर श्रीराधाने ज्यों ही उसे ग्रहण करनेके लिए हाथ बढ़ाया, त्यों ही उस सर्पने उसे डस लिया॥२५-२६॥

हा मूर्ध्नि कोऽयं मम वज्रपात
इति ब्रुवाणा त्वरया ययौ सा।
विलोक्य राधां भुवि वेपमानां
तताड़ सोच्चैः स्वमुरः कराभ्याम् ॥२७ ॥

भावानुवाद—विशाखाकी बातको सुनकर जटिला बोली—हाय! हाय! मेरे सिरपर यह कैसा वज्राघात हुआ? ऐसा कहते-कहते जटिला शीघ्र ही श्रीराधाके कक्षमें गयी और देखा कि श्रीराधा भूमिपर गिरी हुई है और काँप रही है। यह देखकर जटिला दोनों हाथोंके द्वारा अपने वक्षःस्थलको पीट-पीटकर उच्च स्वरसे रोने लगी॥२७॥

गवां गृहादानय पुत्रि! तावत्
स्वभ्रातरं शीघ्रमितः प्रयातु।
स मान्त्रिकानानयतु प्रकृष्टां–
स्ते मे वधुं निर्विययन्तु मन्त्रैः॥२८॥

भावानुवाद—अनन्तर कुटिलाको बुलाकर जटिला बोली—हे पुत्री! तुम शीघ्र ही गोशाला जाकर अपने भाई अभिमन्युको बुला लाओ। वह आकर किसी निपुण मान्त्रिक (मन्त्र-तन्त्र जाननेवाले) अथवा ओझाको बुला लाये। वे लोग मन्त्रपाठ करके वधूको विष-रहित कर देंगे॥२८॥

इत्येवमुक्त्वा जरती जगाद
स्नुषे तनुः सम्प्रति कीदृशी ते।
सन्दह्यमानां विषवह्निनेमाद–
मवैमि वक्तुं प्रभवामि नार्ये॥२९॥

मन्त्रैः करात्यां मम मान्त्रिका–
श्चेदेकां पदस्याङ्गुलिकामपीह।
स्पृशेत्तदासून् सहसा त्यजामि
कुलाङ्गनाया नियमो ममैषः॥३०॥

भावानुवाद—कुटिलाको ऐसा कहकर जटिला श्रीराधासे पूछने लगी—हे पुत्रवधो! तुम्हारा शरीर इस समय कैसा है? श्रीराधा बोली—हे आर्ये (सास)! विषसे सारा शरीर अत्यन्त दग्ध हो रहा है। बस इतना ही जानती हूँ, इससे अधिक और कुछ बोल नहीं पा रही हूँ। किन्तु यदि मन्त्रविद् पुरुष अपने हाथोंसे मेरे पैरोंकी एक अङ्गुलीका भी स्पर्श करेंगे, तो मैं उसी समय देह-त्याग दूँगी। मैं कुलाङ्गना (सती) हूँ, अतः मेरा यह नियम एकदम स्थिर है॥२९-३०॥

स्नुषे! किमेवं वदसीह भक्षये–
दभक्ष्यमस्पृश्यमपि स्पृशेन्नरः।
मन्त्रौषधादौ नहि दूषणंभवे–
दापद्गतस्येति विदां श्रुतिस्मृती॥३१॥

भावानुवाद—जटिला बोली—हे पुत्रवधो! ऐसी बातें मत कहो, क्योंकि ऐसी विपत्तिके समयमें सदाचारी व्यक्ति भी न खाने योग्य वस्तुका भक्षण करते हैं तथा न छूने योग्य वस्तुका भी स्पर्श करते हैं। विपत्तिके समयमें मन्त्र या औषधि ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं होता—श्रुति तथा स्मृति शास्त्र जाननेवालोंने यही व्यवस्था दी है॥३१॥

आज्ञां तवेमां नहि पालयामि
प्राणान् पुरस्थे कलय त्यजामि।
श्रुत्वेति वध्वा वचनं सचिन्तां
जगाद काचित् प्रतिवासिनी ताम्॥३२॥

यः कालियाघादि-भुजङ्गमर्द्दी
दृष्ट्यैव ताः पीतविषोदका गाः।
अजीवयत्तं हरिमानयार्ये!
स ते वधुं निर्विषयेद्विलोक्य॥३३॥

भावानुवाद—श्रीराधा बोलीं—"अभी देखो, मैं तुम्हारे सामने ही अपने प्राणोंका परित्याग करती हूँ, किन्तु तुम्हारी इस आज्ञाका मैं किसी भी प्रकारसे पालन नहीं कर सकूँगी।" वधूकी इस बातको सुनकर जटिला बड़ी चिन्तित हो गयी। उसी समय एक पड़ोसिनने जटिलासे कहा—आर्ये! जिन्होंने कालिय, अघ जैसे विषधर सर्पोंका मर्दन किया है तथा कालियह्रदका विषाक्त जल पान करनेवाली मृत गौओंको केवलमात्र दर्शन करनेसे ही जीवित कर दिया था—उन श्रीहरिको ही बुला लाओ। वे तुम्हारी पुत्रवधूका दर्शन करके ही उसे विषसे रहित कर देंगे॥३२-३३॥

राधाब्रवीद् यत् परिवाद पीड़ां
विषानलादप्यधिकामवैमि ।
तमेव या दर्शयितुं यतन्ते
ता वैरीणीरेव चिरेण वेद्मि॥३४॥

भावानुवाद—यह सुनकर श्रीराधाने कहा—जिसके सम्बन्धमें मेरी झूठी-निन्दारूपी पीड़ा मुझे विषकी ज्वालासे भी अधिक दग्ध करती

है, जो मुझे उस कृष्णको दिखलानेकी चेष्टा करेंगे, उनको मैं अपना चिरशत्रु ही मानती हूँ॥३४॥

तर्हि स्नुषेऽहं ससुता प्रयामि
तां पौर्णमासीं द्रुतमानयामि।
तन्मन्त्र–तन्त्रागमशास्त्र–विज्ञा
सा सुस्थयिष्यत्यलमन्ययुक्त्या॥३५॥

भावानुवाद—जटिला बोली—देखो पुत्रवधो! तब मैं बेटी कुटिलाको साथ लेकर शीघ्र ही पौर्णमासीके पास जाती हूँ। वे उत्कृष्ट सर्प–मन्त्र, तन्त्रादि और आगम शास्त्रोंको अच्छी तरहसे जानती हैं, वे आकर तुम्हें स्वस्थ कर देंगी। अब और कोई अन्य युक्ति मत दे देना॥३५॥

प्रोचे विशाखा तदलं विलम्बै–
र्विषं मयारुद्धमवैहि सूत्रैः।
यामार्द्ध–पर्यन्तमतः परन्तु
शिरोहधिरूढ़ं तदसाध्यमेव॥३६॥

भावानुवाद—विशाखा बोली—आर्ये! यही उत्तम है, अतः अब और विलम्ब न करके उनके समीप जाओ। मैंने रस्सी द्वारा बाँधकर विषकी गतिको रोक रखा है। इससे अर्द्ध प्रहर (डेढ़ घण्टे) तक विष ऊपर नहीं चढ़ेगा, किन्तु उसके बाद विषके सिरमें चढ़ जानेपर रोग असाध्य हो जायेगा॥३६॥

सा पौर्णमास्याः स्थलमभ्युपेत्य
नत्वाऽखिलं वृत्तमवेदयत्ताम्।
पप्रच्छ गार्गीमथ पौर्णमासी
त्वं सर्पमन्त्रान् पितुरध्यगीष्ठाः॥३७॥

किं पुत्रि! साख्यन्नहि वेद्मि किञ्च
कनीयसी मे भगिनी तु वेत्ति।
क्व सा किमाख्या किल किन्निवासा
काशीपुरात् सा श्वशुरस्य गेहात्॥३८॥

पितुर्गृहं वृष्णिपुरे गताऽभू–
त्ततोऽपि मामत्र दिदृक्षमाणा।
पूर्वेद्युरेवागमदस्ति नाम्ना
विद्यावलिर्मद्‌गृहमध्य एव॥३९॥

भावानुवाद—तदनन्तर जटिलाने पौर्णमासीके निकट जाकर उन्हें प्रणाम किया तथा सारा वृत्तान्त निवेदन किया। यह सुनकर पौर्णमासी गर्गकन्या गार्गीसे पूछने लगीं—हे पुत्री गार्गि! क्या तुमने अपने पितासे सर्पका मन्त्र सीखा है?

गार्गीने उत्तर दिया—मैंने तो नहीं सीखा, परन्तु मेरी छोटी बहनने सीखा है।

पौर्णमासीने पूछा—वह कहाँ रहती है तथा उसका नाम क्या है? इस समय वह कहाँ मिल सकेगी?

गार्गी बोली—काशीपुरमें उसकी ससुराल है। वहाँसे वह मथुरामें अपने पितृगृहमें आयी हुई है तथा कल ही मुझे देखनेके लिए मेरे पास यहीं आयी है। उसका नाम विद्यावलि है और वह इस समय मेरे ही घरपर है॥३७-३९॥

जरत्यथोचे बहुविक्लवाश्रु–
सिक्तानना गार्गि! नताऽस्म्यहं त्वाम्।
तामानयास्मद् भवनं सपुत्रां
क्रीणीहि मां स्वीय कृपामृतेन॥४०॥

भावानुवाद—इस बातको सुनकर बूढ़ी जटिला अत्यन्त दुःखित होकर तथा अश्रुपूर्ण मुखसे गार्गीसे बोली—हे गार्गि! मैं तुम्हारे चरणोंमें गिरती हूँ। तुम अपनी बहनके साथ हमारे घर चलो तथा मुझे और मेरे पुत्रको अपने कृपामृतरूपी दानसे खरीद लो॥४०॥

गार्गि! त्वमादौ स्वगृहं प्रयाहि
ततः स कन्या जटिला प्रयातु।
प्रसाद्य तामानयतां ततः सा
राधां ध्रुवं निर्विषयिष्यते द्राक्॥४१॥

भावानुवाद—तब पौर्णमासीने गार्गीसे कहा—गार्गि! तुम सबसे पहले अपने घर जाओ और फिर अपनी कन्याके साथ जटिला भी वहाँ जायेगी। यदि वे विद्यावलिको प्रसन्न करके ले आयेगी तो निश्चय ही राधिका अतिशीघ्र विषशून्य हो जायेगी॥४१॥

पुर्वं धनिष्ठा–वचसैव गार्गी
स्त्रीवेशिनं कृष्णमगार मध्ये।
अस्थापयत्तर्हि तु सा जरत्या
सहैव तत्पार्श्वगता जगाद॥४२॥

भावानुवाद—गार्गीने इससे पहले ही धनिष्ठाके वचनोंके अनुसार श्रीकृष्णको रमणीवेशमें सजाकर अपने घरमें रख दिया था। अतएव, तब आगे-पीछे जानेकी आवश्यकता न देखकर वह जटिलाको साथ लेकर ही अपने घरमें गयी तथा रमणीवेशधारी श्रीकृष्णसे बोली॥४२॥

विद्यावले! भो भगिनि! व्रजेऽस्मिन्
या नित्यराजद्–गुणरूपकीर्त्तिः।
त्वया श्रुता श्रीवृषभानु–पुत्री
तस्या विपत्तिमर्हती वताद्य॥४३॥

केनापि दष्टा मणिधारिणा सा
सर्पेण हालाहल–पुरिताऽभूत्।
श्वश्रुरमुष्याः ससुता प्रपन्ना
त्वां तत्त्वमेतद्भवनं जिहीथाः॥४४॥

भावानुवाद—हे बहन विद्यावले! इस व्रजमें सर्वगुण सम्पन्न तथा महा-यशस्विनी श्रीवृषभानुनन्दिनीका तुमने जो नाम सुना है, आज उस पर महा-विपत्ति आयी हुई है। किसी मणिधारी सर्पने उसे डस लिया है और उसकी देह इस समय विषसे पूर्ण हो गयी है। इसीलिए उसकी सास अपनी बेटी कुटिलाके साथ तुम्हारे पास आयी है, अतः तुम्हें एकबार इनके घरमें जाना होगा॥४३-४४॥

विद्यावलिः प्राह भगिन्ययि त्वं
विज्ञाप्य विज्ञेव गिरं तनोषि।
कुलाङ्गना विप्रवधुरहं किं
भवन्मते जाङ्गलिकी भवामि॥४५॥

भावानुवाद—विद्यावलि बोली—हे बहिन! तुम जानकर भी अज्ञानीकी तरह बात कर रही हो। हाय! हाय! एक तो मैं कुलस्त्री हूँ और उस पर भी ब्राह्मण-वधू हूँ, अतः क्या तुम्हारे विचारसे मैं जाङ्गलि (साँप पकड़नेवाले—सपेरे) की विद्या जाननेवाली हूँ?॥४५॥

पितुः कुलं वृष्णिपुरेऽस्ति पत्युः
कुलन्तु काश्यां प्रथितं नृलोके।
कलङ्क-पङ्केन निमज्जयन्ती
मां त्वं कथं स्निह्यसि तन्न बुध्ये॥४६॥

भावानुवाद—देखो, मथुरामें मेरे प्रसिद्ध पितृकुलको तथा काशीमें विख्यात श्वसुरकुलको इस जगत्में कौन नहीं जानता? तुम इन दोनों कुलोंको कलङ्करूपी दलदलमें डुबोकर क्या अपने स्नेहका परिचय दे रही हो? मैं इसे समझ नहीं पा रही हूँ॥४६॥

जरत्यवोचत्तव पादपद्मे
नताऽस्मि संजीव्य वधूं मदीयाम्।
मां त्वं सपुत्रां निज पादधूलि
क्रीतां विधेहीत्यथ किं ब्रवीमि॥४७॥

भावानुवाद—तब बूढ़ी जटिला बोली—मैं तुम्हारे चरणकमलोंमें प्रणत हो रही हूँ (प्रणाम कर रही हूँ)। तुम मेरी पुत्रवधूको जीवन दान देकर मेरे पुत्रके साथ मुझे अपनी चरणकमलकी धूलि दान करके खरीद लो—और अधिक क्या कहूँ?॥४७॥

विद्यावलिः प्राख्यदयि व्रजस्थे
जानासि न ब्रह्मकुलस्य रीतिम्।
गृहं गृहं गोप्य इव भ्रमन्ति
न विप्रवध्वः सुमहाभिजात्यात्॥४८॥

प्रोवाच गार्गी शृणु भो श्रुति-स्मृति-
प्रोक्तं निषिद्धं विहितञ्च यद्भवेत्।
ज्ञात्वापि तत् सर्वमिदं ब्रवीषि चेत्
न तेऽस्ति दृष्टिः किल पारमार्थिकी॥४९॥

भावानुवाद—विद्यावलि बोली—अरी व्रजवासिनि बूढ़ी! तुम हमारे ब्राह्मण-कुलकी रीतिको नहीं जानती हो। विप्र-वधुएँ गोपस्त्रियोंके समान घर-घरमें नहीं घूमती हैं, क्योंकि उनका उच्च-कुल अत्यन्त महान है।

गार्गी बोली—हे बहन! तुम श्रुति और स्मृतिमें कहे हुए करने योग्य तथा निषिद्ध समस्त कार्योंसे अवगत होकर भी इस समय ऐसी बात अर्थात् जाति-कुल-सम्बन्धी विचार प्रकाशित कर रही हो। इससे ऐसा जाना जायेगा कि तुम्हारी पारमार्थिकी दृष्टि नहीं है॥४८-४९॥

व्रजे स्थिताः कीर्त्तिदयान्विता या
गोप्यस्तथा ये वृषभानु तुल्याः।
पोपा न तेषां त्वमवैषि तत्त्वं
नाप्याभिजात्यं न च विष्णुभक्तिम्॥५०॥

भावानुवाद—देखो—कीर्त्ति, दया जैसे गुणोंसे युक्त जो सब व्रजवासिनी गोपियाँ हैं तथा वृषभानु तुल्य जो सब गोप हैं—तुम उनके तत्त्व, जाति-कुल तथा विष्णुभक्तिके विषयमें कुछ भी नहीं जानती हो॥५०॥

काश्यां स्थिता विष्णु-बहिर्मुखा ये
विप्रा भवत्याः श्वशुरादयस्तान्।
जानामि नो वाचय मां तवेयं
काश्यां स्थितेर्बुद्धिरभूत् कठोरा॥५१॥

भावानुवाद—काशीवासी ब्राह्मणगण, विशेष रूपसे तुम्हारे श्वसुर-सास विष्णु-बहिर्मुख हैं। मैं उन्हें अच्छी प्रकारसे जानती हूँ, अतः मुझे इस विषयमें और अधिक मत कहो। काशीपुरमें वास करनेसे तुम्हारी बुद्धि भी कठोर हो गयी है॥५१॥

मा कुप्य शान्तिं भज तावदार्ये!
भगिन्यहं ते हन्त तवाश्रिताऽस्मि।
यथा ब्रवीष्येवमहं करोमि
किन्त्वत्र शङ्का मम काचिदस्ति॥५२॥

भावानुवाद—विद्यावलि बोली—हे बहिन! हे आर्ये! मेरे प्रति कोप मत करो, शान्त हो जाओ। मैं पूर्णता तुम्हारे आश्रित हूँ, तुम जो कहोगी, मैं वही करूँगी। किन्तु इस सम्बन्धमें मेरी एक भीषण शङ्का है॥५२॥

पुरे श्रुता काचन किम्वदन्ती
नन्दस्य पुत्रोऽजनि कोऽपि वीरः।
स स्वैरचर्यो बत लम्पटत्वा—
न्न ब्रह्मजातेरपि भीतिमेति॥५३॥

भावानुवाद—मथुरामें मैंने एक प्रवाद सुना है। नन्द महाराजका कोई एक वीर पुत्र है, वह बड़ा ही स्वेच्छाचारी तथा लम्पट है। वह ब्राह्मण जातिका भी कोई भय नहीं करता है॥५३॥

अत्रेत्य नारीष्विव मय्यपि द्राक्
स लोभदृष्टिर्यदि वर्त्मनि स्यात्।
सद्यस्तदासून् विसृजामि नैव
कुलद्वयं हन्त! कलङ्कयामि॥५४॥

भावानुवाद—वह यहाँकी व्रजनारियोंकी भाँति यदि मेरे प्रति भी सहसा पथके बीचमें लोभ दृष्टि करेगा, तो मैं उसी समय अपने प्राणोंका त्याग कर दूँगी। हाय! मैं किसी भी प्रकारसे दोनों कुलोंको कलङ्कित नहीं कर सकती॥५४॥

न तत्र शङ्का तव कापि यस्माद्
अहं स्वयं त्वत् सहिता प्रयामि।
इत्येव गार्ग्या वचनाच्चलन्ती
विद्यावलिर्वर्त्मनि किञ्चिदूचे॥५५॥

भावानुवाद—गार्गी बोली—हे बहन! इस विषयमें तुम कोई भय मत करो, क्योंकि स्वयं मैं तुम्हारे साथ चल रही हूँ। विद्यावलि इससे सहमत होकर गार्गी आदिके साथ जाते-जाते पथमें जटिलासे कहने लगी— ॥५५॥

मन्त्रौषधाभ्यां गरलस्य नाश–
स्तत्रास्ति मन्त्रो मम कण्ठ एव।
यच्चौषधं तत्त्वहि–वल्लिपर्णं
मन्त्रं जपन्त्यारदपिष्टमेव ॥५६॥

तत्ते वधुः सा मम भक्षयेत् किं
न वेति पृष्टा जटिला जगाद।
सा मे स्नुषा ब्राह्मणजातिभक्ता
तद्भक्षयेदेव किमत्र चित्रम् ॥५७॥

प्रोवाच गार्गी न किलौषधादा–
वभक्ष्यभक्ष्यस्य भवेद्विचारः।
तत्रापि भूदेवकुलस्य शेषं
राजाऽपि भुङ्क्ते किमुतान्यजातिः ॥५८॥

भावानुवाद—देखो, मन्त्र तथा औषध द्वारा विषका नाश किया जाता है। मन्त्र तो मेरे कण्ठमें है और जो औषधका प्रयोग करना होगा वह तो दन्त-पिष्ट (दाँतोंसे पीसा हुआ) अर्थात् चर्वित तथा मन्त्र-पूत (मन्त्रोंसे पवित्र) ताम्बूल-बीड़ी मात्र है। हे आर्ये! क्या तुम्हारी पुत्रवधू उसका भक्षण करेगी?

विद्यावलिके द्वारा जटिलासे ऐसा पूछे जानेपर वह बोली—मेरी पुत्रवधू ब्राह्मण जातिके प्रति परम भक्तिमती है, अतएव तुम्हारा चर्वित ताम्बूल अवश्य भक्षण करेगी—इसमें सन्देहकी बात ही क्या है?

गार्गी बोली—औषधिमें तो भक्ष्य या अभक्ष्य इत्यादिका विचार नहीं होता। यहाँ तक कि ब्राह्मणोंका उच्छिष्ट राजा-महाराजा भी भक्षण करते हैं, अन्य जातिके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या? ॥५६-५८॥

प्रविष्टवत्याः स्वगृहं ततः सा
विद्यावलेः पादयुगं स-पुत्रा।
अधावयत्तत् सलिलं स्ववध्वा-
श्चिक्षेप मूर्द्धाक्षिमुखोरसि द्राक्॥५९॥

भावानुवाद—विद्यावलि द्वारा जटिलाके घरमें प्रवेश करनेपर उसने अपने पुत्रके साथ उसके (विद्यावलिके) दोनों चरणोंको धोकर उसी समय उस जलको अपनी बहूके मस्तकपर, नेत्रोंपर, मुखपर और वक्षःस्थलपर छिड़क दिया॥५९॥

प्रोचे स्नुषे! कापि महानुभावा
गर्गस्य पुत्र्यागमदत्र भाग्यात्।
सा सुस्थयिष्यत्यचिरेण विज्ञा
मन्त्रैस्त्वदङ्गानि मुहुः स्पृशन्ती॥६०॥

किञ्चाहिवल्लीदल-वीटिकाञ्च
सञ्चर्वव्य दन्तैः पठितैः स्वमन्त्रैः।
निधास्यते तन्मुख एव तत्र
घृणा न कार्या शपथो ममात्र॥६१॥

भावानुवाद—जटिला श्रीराधासे बोली—हे पुत्रवधो! भाग्यवशतः महानुभवी सर्प-विद्या निपुण गर्गकन्या आयीं हैं। यह तुम्हारे समस्त अङ्गोंको मन्त्र-पाठ सहित स्पर्श करते-करते थोड़ी देरमें ही तुम्हें स्वस्थ कर देंगी। और एक बात है—मन्त्र-पाठके साथ ये अपने दाँतों द्वारा ताम्बूल वीटिकाका चर्वण करके तुम्हारे मुखमें प्रदान करेंगी। तुम्हें मेरी शपथ है, तुम इस विषयमें घृणा मत करना॥६०-६१॥

विद्यावलिस्तन्निलयं प्रविष्टा
विलोक्य राधां वसनावृताङ्गीम्।
वध्वाः पदान्मस्तकतश्च वस्त्र-
मुदञ्चयादौ जरतीत्यवोचत्॥६२॥

भुजङ्ग मन्त्रैरभिमन्त्र्य पाणिं
सञ्चालयाम्यङ्घ्रि त उर्द्ध्वगात्रे।
यद्यावदङ्गं विषमारुरोह
ज्ञात्वैव तन्निर्विषयामि मन्त्रैः॥६३॥

भावानुवाद—तब विद्यावलिने श्रीराधाके कक्षमें प्रवेश किया। वहाँ देखा कि श्रीराधाके समस्त अङ्ग वस्त्र द्वारा आवृत है। ऐसा देखकर वह जटिलासे बोली—हे बूढ़ी! तुम्हारी पुत्रवधूको पैरोंसे सिर तक ढकनेवाले इस वस्त्रको हटा दो, क्योंकि मैं सर्प-मन्त्रका जप करते हुए पैरोंसे लेकर ऊपर तक हाथ चलाऊँगी। जिस अङ्ग तक विष चढ़ा हुआ है, उसे हस्त-सञ्चालनसे जानकर उसी अङ्गमें पुनः-पुनः मन्त्र-पाठ करके इसे विष शून्य करूँगी॥६२-६३॥

ततश्चलन् पाणिरगादमुष्या
वक्षःस्थलं नोर्द्ध्वमतः परं यत्।
तद् घट्टयामास मुहुः कराभ्या-
मस्या उरो गारुड़-मन्त्रपाठैः॥६४॥

भावानुवाद—तदनन्तर जटिलाने श्रीराधाके अङ्गोंको ढकनेवाले वस्त्रको हटा दिया। विद्यावलि हस्त-चालन करते-करते श्रीराधाके श्रीचरणोंसे क्रमशः वक्षःस्थल तक स्पर्श करने लगी, किन्तु उसका हाथ इसके ऊपर आगे नहीं जा रहा था। तब वह बार-बार गारुड़-मन्त्र पाठ करते-करते अपने दोनों हाथों द्वारा श्रीराधाके वक्षःस्थलका स्पर्श करने लगी॥६४॥

विद्यावलिः प्राख्यदहो किमेतद्
विषं न शाम्येत् करवै किमत्र।
वृद्धाऽब्रवीत् स्वास्यत औषधं तदास्ये-
स्नुषायाः क्षिप भोजयामुम्॥६५॥

भावानुवाद—विद्यावलि वृद्धासे बोली—हे वृद्धे! अहो क्या हो गया है! विष किसी भी प्रकारसे उतर नहीं रहा है। अब मैं इस

विषयमें क्या करूँ? तब वृद्धा बोली—अपने मुखसे वधूके मुखमें पूर्व कथित चर्वित औषधि डालकर तो देखो। इसे वही औषधि प्रदान करो॥६५॥

मुहुर्मुहुः प्राक्षिपमौषधं त–
दास्ये अमुष्याः कृतमन्त्र–पाठा।
तथापि वैवर्णवती वधुस्ते
प्रकम्पते निःश्वसिति प्रगाढ़म्॥६६॥

सर्वा बहिर्यात गृहं कवाटे–
नावृत्य सर्पस्य जपामि मन्त्रम्।
मुहूर्त्त–मात्रेण तमेव सर्प–
माहूय तेनापि सहालपामि॥६७॥

चिन्ता न कार्या तिलमात्र्यपि द्राक्
संजीवयिष्यामि वधूं त्वदीयाम्।
एकाग्रचित्ता घटिकात्रयान्ते
मन्त्रं प्रजप्याखिलमीक्षयामि॥६८॥

भावानुवाद—विद्यावलि बोली—हे वृद्धे! मैं बार-बार तुम्हारी वधूके मुखमें मन्त्रपूत औषधि डाल रही हूँ, तथापि तुम्हारी वैवर्ण्यवती (विषसे पीली हुई) वधू काँप रही है तथा दीर्घनिःश्वास ले रही है। देखो, चिकित्सा परिवर्त्तन करना होगा—तुम सब अब कक्षसे बाहर जाओ, इस कक्षके द्वारको बन्द करके मैं सर्पमन्त्रका जप करूँगी। मुहूर्त्त भरमें ही जिस सर्पने तुम्हारी पुत्रवधूको डसा है, उसे बुलाकर उसके साथ वार्त्तालाप करूँगी। तुम बिन्दुमात्र भी चिन्ता मत करो, शीघ्र ही तुम्हारी वधूको जीवित करूँगी। एकाग्रचित्तसे इस मन्त्रका जप करके तीन घण्टेके पश्चात् तुम सबको सब कुछ दिखाऊँगी॥६६-६८॥

गार्गी–गिरा ता ययुरन्यगेहं
मुहूर्त्ततश्चाययुरप्यथात्र ।
विद्यावलेर्वाचमहेश्च गोप्यो
गृहान्तरे भोः शृणुतेत्यथोचुः॥६९॥

भावानुवाद—तत्पश्चात् गार्गीके परामर्शसे वे सब दूसरे कक्षमें चले गये तथा एक मुहूर्त्तके बाद ही पुनः आँगनमें उसी कक्षके निकट लौट आये। अनन्तर जटिला और कुटिलाको इङ्गित करके गोपियाँ परस्पर एक-दूसरेसे कहने लगीं—अरी! तुमलोग कक्षमें विद्यावलि तथा सर्पके बीच हो रहे वार्त्तालापका श्रवण करो॥६९॥

स्वरद्वयेनैव जगाद कृष्णा
यत्तत्तु सख्यः सहसाऽवजग्मुः।
याः कौतुकानन्द-समुद्रयोर्द्राग्
आवर्त्त मग्नाः सुभृशं विरेजुः॥७०॥

भो सर्पराजात्र कुतस्त्वमागाः
कैलासतः कस्य निदेशकृत्त्वम्?
चन्द्रार्द्धमौलेः स च कीदृशोऽभूद्
भुङ्क्ष्वाभिमन्युं जटिला-सुतं द्राक्॥७१॥

भावानुवाद—श्रीकृष्ण दो प्रकारके स्वरोंके द्वारा अर्थात् एक स्वरमें विद्यावलिकी बोलीका और दूसरे स्वरमें सर्पकी बोलीका अनुकरण करने लगे—सखियाँ इसे उसी क्षण समझ गयीं। वे सब एक साथ कौतुक तथा आनन्दसमुद्रके आवर्त्तमें निमग्न होकर परम शोभाका विस्तार करने लगीं। श्रीकृष्ण विद्यावलिके स्वरमें पूछने लगे—हे सर्पराज! तुम कहाँसे आये हो?

सर्प स्वरमें—कैलाशसे।

विद्यावलि स्वरमें—तुम किसकी आज्ञासे आये हो?

सर्प स्वरमें—चन्द्रार्द्धमौलि अर्थात् शिवजीके आदेशसे आया हूँ।

विद्यावलि स्वरमें—उनका क्या आदेश है?

सर्प स्वरमें—जटिला पुत्र अभिमन्युको डँसो॥७०-७१॥

आगः किमेतस्य, न किञ्च किन्तु
तन्मातुरेवास्त्यपराधयुग्मम्।
सा किं न दष्टा, गरलानलाद-
प्यपत्य-शोकाग्निरतीव तीव्रः॥७२॥

तयाऽनुभूतो भवतु प्रगाढ़–
मित्येतदर्थं नहि दश्यते सा।
त्यक्त्वाऽभिमन्युं कथमस्य जाया
दष्टाऽत्र साधव्य–वर–प्रदानात् ॥७३॥

दुर्वाससासौ प्रथमं न तस्मा–
द्दष्टः स दष्टव्य इह प्रभाते।
पुत्रस्य वध्वाश्च यथाऽति शोके
जाज्ज्वल्यते सा निखिलं स्वमायुः ॥७४॥

भावानुवाद—विद्यावलि—अभिमन्युका अपराध क्या है?

सर्प—उसका कोई अपराध नहीं है, किन्तु उसकी माताने दो अपराध किये हैं।

विद्यावलि—तब तुमने अभिमन्युकी माताको क्यों नहीं डँसा?

सर्प—विषानलसे भी पुत्रका शोकानल अति तीव्र होता है—इसका यथेष्ट अनुभव करानेके अभिप्रायसे ही मैंने जटिलाको नहीं डँसा।

विद्यावलि—फिर अभिमन्युको छोड़कर उसकी पत्नीको क्यों डँसा?

सर्प—मुनिवर दुर्वासाने श्रीराधाको सौभाग्यवती होनेका वरदान प्रदान किया है अर्थात् सतीकुल शिरोमणि श्रीराधाके जीवित रहनेसे अभिमन्युकी मृत्यु होना असम्भव है। दुर्वासाके वरदानका तथा श्रीराधाके सतीत्वका ऐसा ही प्रताप है। इसलिए यदि पहले श्रीराधाको डँसकर उसे जीवनहीन न करूँ तो अभिमन्युका मरण नहीं होगा। अतः आज श्रीराधाको डँसा है, कल प्रातः अभिमन्युको डसूँगा। इससे पुत्र तथा पुत्रवधूके अत्यधिक शोकसे वृद्धा जटिलाका जीवन अत्यन्त क्लेशदायक बन जायेगा ॥७२–७४॥

किं हन्त तस्याः अपराध–युग्मं
दुर्वाससि श्रील हरस्वरूपे।
कटाक्ष एकोऽस्त्यपरन्तु शम्भो–
र्य इष्टदेवो हरिरस्य चांशे ॥७५॥

नन्दात्मजेऽलीक महाप्रवाद–
स्तद्भोजने बाधकरः स्व–वध्वाः।
निरोधतस्तन्निजकन्यया सा
सार्द्धं व्रजे रोदितु सर्वकालम् ॥७६॥

भावानुवाद—विद्यावलि—जरा बतलाओ तो वृद्धाके दो अपराध कौन–कौनसे हैं?

सर्प—श्रील हर–स्वरूप दुर्वासाके प्रति कटाक्ष—पहला अपराध है और द्वितीय अपराध यह है कि जो शम्भुके भी इष्टदेव हैं, उन श्रीहरिके भी अंशी स्वरूप श्रीनन्दनन्दनके विरुद्ध मिथ्या कलङ्क लगाकर इसने अपनी वधूको रोककर उनके भोजनमें बाधा पहुँचायी है। अतएव इन दोनों अपराधोंके लिए पुत्रवधू तथा पुत्रके शोकमें जटिला अपनी कन्याके साथ व्रजमण्डलमें चिरकाल तक रोदन करे॥७५–७६॥

हा पुत्र! हा प्राणसमे स्नुषे किं
शृणोमि हा हन्त! चिरायुषौस्तम्।
विद्यावले! त्वच्चरणौ प्रपन्ना
प्रसादयामुं भुजगाधिराजम् ॥७७॥

वधूं न रोत्स्यामि कदापि सेयं
प्रयातु नन्दस्य पुरं यथेष्टम्।
सम्भोजयित्वैव हरिं प्रकामं
पक्त्वा पुनर्मद्गृहमेतु नित्यम् ॥७८॥

भावानुवाद—यह सुनकर वृद्धा उच्च स्वरसे रोदन करने लगी तथा आर्त्त नादके साथ कहने लगी—हा पुत्र! हा प्राणोंके समान पुत्रवधो! हाय! हाय! तुम दोनों चिरायु हुए हो—क्या मैं अब ऐसा सुन नहीं सकूँगी? तदनन्तर जटिला विद्यावलिको सम्बोधन करके बोली—हे विद्यावले! मैं तुम्हारे चरणोंमें शरणागत हूँ। इस सर्पाधिराजको जिस किसी भी प्रकारसे प्रसन्न करो। अब मैं बहूको कभी भी नहीं रोकूँगी। हमारी पुत्रवधू प्रतिदिन अपनी इच्छानुसार नन्दालय जाकर

रसोई बनायेगी, नित्य पाक-कार्य समाप्तकर श्रीकृष्णको भोजन करायेगी तथा अन्तमें हमारे घर लौट आयेगी॥७७-७८॥

दुर्वाससं तं शतशो नमामि
मुनेऽपराधं मम हा क्षमस्व।
जरातुराया अतिमन्दबुद्धे-
राजन्म-बातुलतया स्थितायाः॥७९॥

भावानुवाद—हे मुनिवर दुर्वासा! मैं आपके चरणोंमें नमस्कारपूर्वक शत-शत दण्डवत्-प्रणाम करते हुए प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरा अपराध क्षमा करो। मैं वृद्धा, अत्यन्त मन्द बुद्धिवाली तथा जन्मसे ही वातुल (पागल) अथवा उन्मत्त हूँ—ऐसी मेरी प्रसिद्धि है॥७९॥

कन्या ममेयं तु सदा कुबुद्धि-
र्वधूः सुशीलां प्रसभं दुनोति।
श्रुत्वेति मातुर्वचनं धरण्यां
निपत्य सोचे कुटिलाऽपि नत्वा॥८०॥

क्षमस्व सर्पेन्द्र-कृपां कुरुष्व
मद्भ्रातरं मा दश नैव रोत्स्ये।
वधूं न चापि प्रवदामि यातु
तत्रालिभिर्यत्र भवेत्तदिच्छा॥८१॥

भावानुवाद—मेरी यह कन्या कुटिला सर्वदा ही कुटिल बुद्धि युक्त है, अतः मेरी सुशील बहूको अकारण ही अत्यधिक पीड़ा देती है। माताकी यह बात सुनकर कुटिला भी धरतीपर गिरकर सर्पराजके उद्देश्यसे नमस्कारपूर्वक कहने लगी—हे सर्पेन्द्र! क्षमा करो, कृपा करो, मेरे भाईको मत डँसना। अबसे मैं बहूको कभी भी नहीं रोकूँगी तथा उस पर कोई भी आरोप नहीं लगाऊँगी। जहाँ भी इच्छा हो, बहू सखियोंके साथ जा सकेगी॥८०-८१॥

सर्पोऽवदद् भोः शृणुताशु गोप्यः
साध्व्येव राधा शपथोऽत्र शम्भोः।

त्वञ्चापि कृत्वा शपथं स्वसूनो
मूर्द्ध्णो वदात्रास्तु मम प्रतीतिः॥८२॥

भावानुवाद—सर्पेश्वर बोले—हे गोपियो! तुम शीघ्र ही मेरे वचनोंको श्रवण करो, मैं शम्भुकी शपथ लेकर कहता हूँ कि श्रीराधा परम साध्वी है। हे जटिले! तुम भी मेरी तरह अपने पुत्रके सिरकी शपथ लेकर इस बातको स्वीकार करो, तभी मुझे विश्वास होगा॥८२॥

त्वदुक्त इत्थं शपथः कृतोऽयं
वधूं न रोत्स्यामि कदाप्यहीन्द्र!
स्नुषा च पुत्रश्च चिराय जीव–
त्विमं वरं मे कृपया प्रयच्छ॥८३॥

भावानुवाद—यह बात सुनकर जटिला अपने पुत्रके सिरपर हाथ रखकर शपथ लेकर बोली—हे सर्पराज! तुम्हारे वचनोंपर मेरा पूरा विश्वास है। मैं कभी भी पुत्रवधूको नहीं रोकूँगी। तुम इस समय कृपा करके मुझे यह वर प्रदान करो कि मेरी पुत्रवधू तथा मेरा पुत्र चिरञ्जीवी रहें॥८३॥

बाढ़ं प्रसन्नोऽस्मि जरत्ययि त्वं
दुर्वाससं पूजय भोजयस्व।
राधाङ्गतः स्वं गरलं गृहीत्वा
व्रजामि कैलासमितोऽधुनैव॥८४॥

कृष्ण–प्रवादं यदि ते स्नुषायै
ददासि देह्यत्र न मेऽस्ति कोपः।
रुणत्सि तां चेत् सहसागतस्ते
वधूञ्च पुत्रञ्च रुषा दशामि॥८५॥

भावानुवाद—सर्प—अरी वृद्धे! ठीक है, मैं तुम्हारे प्रति सम्पूर्णता प्रसन्न हुआ। तुम मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाकी पूजा करो तथा उन्हें भोजन कराओ, मैं इसी क्षण श्रीराधाके अङ्गोंसे विष ग्रहणकर कैलाशकी ओर यात्रा करता हूँ। हे वृद्धे! यदि तुम अपनी वधूको श्रीकृष्ण

सम्बन्धीय झूठा कलंक प्रदान करना चाहती हो, तो करो। इससे मैं तुम्हारे प्रति क्रोधित नहीं होऊँगा, किन्तु आजके बाद उसे कहीं जानेसे रोका, तो मैं उसी समय आकर क्रोधपूर्वक तुम्हारे पुत्र तथा वधूको डँसकर मार डालूँगा॥८४-८५॥

प्रोवाच विद्यावलि रात्तमोदा
भो गोपिका धत्त मुदं महिष्ठाम्।
विषं गृहीत्वान्तरधादहीन्द्रो
निरामयाभूद् वृषभानु-पुत्री॥८६॥

भावानुवाद—तदनन्तर विद्यावलि अत्यन्त आनन्दसे बोली—हे गोपियो! तुम अब परमानन्दित होओ। विष ग्रहण करके सर्पराज अन्तर्धान हो गये हैं तथा वृषभानुनन्दिनी भी इस समय पूर्णता स्वस्थ्य हो गयीं हैं॥८६॥

उद्घाटयामास यदा कवाटं
तदैव सर्वा विविशुर्गृहान्तः।
पप्रच्छु रेतामयि! कीदृशी त्वं
सुस्थाऽस्मि तापो मम नास्ति कोऽपि॥८७॥

भावानुवाद—इसके बाद कपाट खोलकर सभीने कक्षमें प्रवेश किया तथा श्रीराधासे पूछा—अरी राधे! तुम इस समय कैसी हो? श्रीराधा बोलीं—मैं अच्छी हूँ, अब मुझे कोई ताप नहीं है॥८७॥

विद्यावलेरङ्‌घ्रि युगं प्रणेमु
र्धन्यैव विद्या तव धन्यकीर्त्ते।
संजीव्य राधामयि पुण्यवीथीं
धन्यामविन्दस्तव धन्यमायुः॥८८॥

भावानुवाद—तब सभी विद्यावलिके दोनों चरणोंमें झुककर प्रणाम करते हुए बोलीं—हे विद्यावले! तुम्हारी कीर्त्ति धन्य है। तुमने श्रीराधाको सञ्जीवित करके प्रचुर पुण्यराशिको अर्जित किया है तथा तुम्हारी आयु भी धन्य हुई है॥८८॥

ललाग कर्णे कुटिला जरत्याः
सा प्राह कन्ये किमिदं ब्रवीषि।
एकेन हारेण किमद्य सर्वा–
लङ्कारमस्या अधुनैव दास्ये॥८९॥

भावानुवाद—उस समय कुटिला अपनी माताके कानमें बोली—इस विद्यावलिको श्रीराधाका हार पुरस्कार रूपमें देना होगा। जटिला बोली—यह तुम क्या कह रही हो कुटिले! केवल हार ही क्यों? श्रीराधाके समस्त अलङ्कार ही इसी समय इसे दे देती हूँ!॥८९॥

स्नुषे! प्रसीद स्वकरेण सर्वा–
लङ्कारमेतां परिधापय त्वम्।
व्रजेश्वरी त्वज्जननी च शीघ्रं
दास्यत्यनेकाभरणानि तुभ्यम्॥९०॥

भावानुवाद—तब जटिला श्रीराधासे बोली—हे पुत्रवधो! तुम प्रसन्न चित्तसे अपने समस्त अलङ्कारोंको इसे पहना दो। व्रजेश्वरी (श्रीयशोदा) तथा तुम्हारी माता शीघ्र ही तुम्हें अनेक आभूषण दे देंगी॥९०॥

विद्यावले! मच्छपथो न नेति
मा ब्रूह्यतो मौनवती तव त्वम्।
ततस्तु राधा परिधापयन्ती
भूषाम्बरादि स्वगतं जगाद॥९१॥

भावानुवाद—फिर वह विद्यावलिसे बोली—हे विद्यावले! मेरी पुत्रवधू तुम्हें अपने हाथोंसे आभूषण पहनायेगी—तुम्हें मेरी सौगन्ध है, तुम उसे ग्रहण करो। तुम कदापि ऐसा मत कहना कि "मैं ग्रहण नहीं करूँगी"। तत्पश्चात् श्रीराधा विद्यावलि रूपधारी श्रीकृष्णको वस्त्र, भूषणादि पहनाने लगी और मन-ही-मन कहने लगी— ॥९१॥

यो मां सखीनां पुरतोऽपि नैव
शशाक सम्भोक्तुमयं प्रियो मे।
श्वश्वा ननान्दुश्च समक्षमेव
मां निर्विवादं समभुङ्क्त बाढ़म्॥९२॥

भावानुवाद—जो मेरी प्राणोंके समान प्रियसखियोंके सम्मुख मेरे साथ सम्भोग नहीं कर पाते—उन्हीं प्रियतमने आज मेरी सास तथा ननदके सामने ही मेरा निर्विवाद रूपसे यथेच्छ उपभोग किया है॥९२॥

वाम्यञ्च कर्त्तुम् मम नावकाशो–
अभूवं परं केवल दक्षिणैव।
किन्त्वद्य वाञ्छा जनुषोऽप्यपुरि
तच्चर्वितं भुक्तमहो मुहुर्यत्॥९३॥

भावानुवाद—आज मुझे वाम्य भाव प्रकाश करनेका अवकाश ही नहीं मिला—आज तो मैं केवल दक्षिण भावमें ही रह गयी। जैसा भी हो, आज मेरे जन्म-जन्मकी इच्छा पूर्ण हुई है, क्योंकि प्रियतमका चर्वित ताम्बूल बार-बार आस्वादनके लिए प्राप्त हो सका॥९३॥

पादे निपत्यैव मदीयकान्त–
मानीय साक्षात् समभोजयन्माम्।
वधूं तदस्याश्चरण ननान्दुः
श्वश्वाश्च मे भक्तिरविच्युताऽस्तु॥९४॥

भावानुवाद—जिस सास और ननदको मैं इतने दिनों तक अपना शत्रु मानती थी, आज वे ही मेरे प्राण-कान्तके श्रीयुगलचरणोंमें गिरकर उन्हें अपने घरमें लायी तथा उन्हें मेरे साथ मिलाकर साक्षात् भावसे मुझे उपभोग करवाया। अतएव अपनी सास तथा ननदके चरणोंमें मेरी अचला भक्ति हो—यही प्रार्थना है॥९४॥

सम्भोगपश्चादपि तन्निदेशा–
च्छृङ्गावयामि प्रियमग्रतोऽपि।
अस्या अये धन्य विधेर्नुमस्तां
वृत्तं तवैतत् क्व नु वर्णयामि॥९५॥

भावानुवाद—आज मैं मिलनके बाद भी उस सासके आदेशानुसार प्रियतम प्राणवल्लभको उनके ही सम्मुख विभूषित कर रही हूँ। हे विधाते! तुम धन्य हो! तुम्हें नमस्कार करती हूँ अथवा स्तुति करती हूँ। तुम्हारा यह वृत्तान्त कहाँ और किसके समीप वर्णन करूँ?॥९५॥

विद्यावलिः प्राह भगिन्यतः किम्
आर्ये! त्वदाज्ञां करवै वदैतत्।
यावो गृहं शीघ्रमतः परन्तु
रात्रिर्निशीथादपि ह्यधिकाऽभूत्॥९६॥

भावानुवाद—इसके बाद विद्यावलि कहने लगी—हे आर्ये (जटिला)! अभी मध्य-रात्रिसे भी अधिक समय हो गया है। अब तुम्हारे किस निर्देशका पालन करूँ, बतलाओ। अन्यथा शीघ्र ही हम दोनों बहनें घर जा रही हैं॥९६॥

जरत्यवादीदयि गार्गि! विद्या-
वलिस्तथा त्वञ्च हठादियत्याम्।
रात्रौ कथं यास्यथ आः सुखेन
ममैव गेहे स्वपितं कथं न?॥९७॥

भावानुवाद—तब वृद्धा जटिलाने कहा—हे गार्गि! हे विद्यावले! तुमलोग इस रात्रि कालमें किस प्रकार अपने घर जाओगी? अहो! क्यों नहीं आज तुम दोनों हमारे ही घरपर सुखसे शयन करती?॥९७॥

जगाद गार्गी जटिले! त्वदुक्त-
मवश्यमेतत् करवाव बाढ़म्।
न याति चित्ताद्विष-शेषगन्ध-
सम्भावना मे खलसर्पजातेः॥९८॥

भावानुवाद—गार्गी कहने लगी—जटिले! मैं अवश्य ही तुम्हारे वचनोंका पालन करूँगी, क्योंकि हमलोगोंके चित्तसे खल सर्पजातिकी विष-गन्ध अभी भी पूर्णता विदूरित नहीं हुई है, अर्थात् कृष्ण-सर्प द्वारा डँसे गये लोगोंमें विषकी क्रिया प्रथमतः प्रशमित होनेपर भी उसके पुनः उठनेकी सम्भावना बनी रहती है, अतएव मन्त्रविदोंका निकट रहना अति आवश्यक होता है॥९८॥

प्रोवाच बाढ़ं जटिला स-कन्या
तदद्य वध्वा सह पुष्पतल्पे।

एकत्र विद्यावलिरिद्धमन्त्रा
सुखं वलभ्यां स्वपितु प्रकामम्॥९९॥

भावानुवाद—अनन्तर कुटिला तथा जटिला दोनों ही कहने लगीं—अच्छा! ऐसा ही हो। हे गार्गि! मन्त्रविद् विद्यावलि आज छतपर स्थित कक्षमें कुसुम-शय्यापर वधूके साथ ही सुखपूर्वक शयन करे॥९९॥

इद्धं विलास-रसिकौ रतसिन्धु चारु
हिल्लोल खेलनकलाः किल तेनतुस्तौ।
प्रेमाब्धिकौतुकमहिष्ठतरङ्गरङ्गे
सख्यः सुखेन ननृतुर्न विराममापुः॥१००॥

भावानुवाद—इस प्रकार विलास-रसिक श्रीश्रीराधाकृष्ण सुरत-सिन्धुके अति सुन्दर हिल्लोलमें अनेक प्रकारसे क्रीड़ा-कला-कौशलरूप विद्याका प्रकाश करने लगे। सखियाँ भी उसी प्रेम-सागरके कौतुकरूप महातरङ्गपूर्ण रङ्गमञ्चपर नृत्य करनेमें प्रवृत्त हुईं—वे उस नृत्यसे विरत नहीं हुई॥१००॥

चतुर्थ कौतूहल

राधा कदाचिददति मानवती बभूव तां
न प्रसादयितुमैष्ट हरिः प्रसह्य।
सामादिभिर्बहुविधैर्विततैरुपायैः
कौन्द्या सहाथ किमपि प्रततान मन्त्रम्॥१॥

भावानुवाद—एक दिन श्रीराधा अत्यधिक मानवती हो गयीं। श्रीकृष्ण साम, दाम, दण्ड तथा भेद आदि बहुत प्रकारके उपायोंके द्वारा किसी भी प्रकारसे उन्हें प्रसन्न नहीं कर पाये। तब वे कुन्दलताके साथ एकान्तमें मन्त्रणा करने लगे॥१॥

भूषाम्बरादि परिधाय विधाय नारी–
वेशं विकस्वर पिक–स्वर–मञ्जु–कण्ठः।
सार्द्धं तया मृदुरणन्मणि–नूपुराभ्याम्–
पद्भ्यां जगाम जटिला–निलयं निलीय॥२॥

भावानुवाद—इसके बाद वे वस्त्र, भूषणादि परिधानोंसे नारीवेशमें सुसज्जित होकर कोयलकी मधुर वाणीको विनिन्दित करनेवाला सुन्दर और मनोहर वार्त्तालाप करने लगे। वे छिपकर श्रीचरणयुगलमें मणि–नूपुरोंसे मृदु–मधुर झंकार करते हुए कुन्दलताके साथ जटिलाके घरकी ओर चलने लगे॥२॥

आराद्विलोक्य सहसा सहसा सहालिः
सौन्दर्य–विस्मितमना अवदन्मृगाक्षी।
एह्येहि कुन्दलतिके! वद वृत्तमाशु
किं हेतुकं गमनमेतदभूदकस्मात्॥३॥

भावानुवाद—दूरसे कुन्दलताके साथ रूपलावण्यवती उस नारीवेशधारी श्रीकृष्णको सहसा देखकर सखियोंके साथ हास्य–मुख मृग–नयनी श्रीराधाका मन विस्मित हो गया। वे कुन्दलताको सम्बोधित करके

कहने लगी—आओ, आओ कुन्दलते! शीघ्र बतलाओ, आज तुम अचानक किसलिए आयी हो? ॥३॥

केयं कुतः किमभिधानवतीति पृष्टा
श्रीराधयावददिमां प्रति कुन्दवल्ली।
नाम्ना कलावलिरियं मथुरा प्रदेशा—
दत्रागता श्रुतभवद्‌गुण—नामकीर्त्तिः ॥४॥

गानैर्गिरां गुरुमपि प्रभवेद्विजेतुं
किम्वाच्यमेतदवगच्छत गापयित्वा।
कस्मादशिक्षदियतीमयि! गान—विद्यां
साक्षात् पुरन्दर—गुरोः क्व नु तत्प्रसङ्गः ॥५॥

भावानुवाद—अहो! तुम्हारे साथ यह रमणी कौन है? कहाँसे आयी है? इसका नाम क्या है? श्रीराधाके इन प्रश्नोंको सुनकर कुन्दलता कहने लगी—हे राधे! इसका नाम कलावलि है। तुम्हारे नाम, गुण, कीर्त्ति इत्यादिका श्रवण करके ये मथुरासे यहाँ आयी है। संगीत-विद्यामें यह बृहस्पतिको भी पराजित करनेवाली है। अधिक क्या कहूँ—तुम इसका गान सुनकर स्वयं ही इस विषयमें अवगत हो जाओगी।

श्रीराधाने कहा—सखि कुन्दलते! इसने यह गानविद्या किससे सीखी है?

कुन्दलताने कहा—पुरन्दर (इन्द्र) के गुरु बृहस्पतिसे।

श्रीराधा—इसने उनका दर्शन किस प्रकारसे प्राप्त किया? ॥४-५॥

सत्रं यदाङ्गिरसमत्र वराङ्गि! वृष्णि—
पुर्यां व्यतन्यत नु माथुर विप्रवयैः।
तर्ह्येव सोऽमर—पुरात् सहसैत्य मासं
वासं विधाय परमादृत आननन्द ॥६॥

भावानुवाद—कुन्दलताने कहा—हे सुन्दर अङ्गोंवाली राधे! माथुर विप्रोंने जो एक सुमहान आङ्गिरस यज्ञका (एक प्रकारका यज्ञ)

अनुष्ठान किया था, उस यज्ञमें बृहस्पतिने देवलोकसे मथुरामें उपस्थित होकर एक महीने तक परम आदरको प्राप्तकर आनन्दका उपभोग किया था॥६॥

मध्ये सतां सहि कदाचिदगायदेवं
गीतं यदेतददधादियमालि! सद्यः।
मेधावती तदपरेद्यु रहो जगौ तत्
तेन स्वरेण बत तैरपि तालतानैः॥७॥

भावानुवाद—हे सखि राधे! उसी समय एक दिन सज्जन-सभामें बृहस्पतिने एक गान किया था—अहो! इस मेधावती कलावलिने उस दुरूह (कठिन) गीतको शीघ्र ही धारण करके दूसरे दिन उसी गीतको उसी स्वरसे तथा उसी ताल-मानसे गाया था॥७॥

श्रुत्वा बृहस्पति रहो मम गीतमारात्
का गायतीति बहु विस्मयवानवादीत्।
मर्त्योऽप्यशिक्षदयि मत् सकृदुक्तितो यद्
दुर्गं द्युगानमपि विप्र! तदानयैताम्॥८॥

भावानुवाद—बृहस्पति इसका वह गान सुनकर विस्मित होकर मथुराके एक ब्राह्मणसे कहने लगे—अहो! मेरे इस दुरूह गीतको कौन रमणी गान कर रही है? इस नारीने मर्त्य-लोकवासिनी होकर भी स्वर्ग सम्बन्धीय इस दुर्गम गानको एक बारमें ही मेरे मुखसे सुनकर सीख लिया है—यह बड़े आश्चर्यकी बात है। अतएव हे विप्र! इसे मेरे समीप लाओ॥८॥

विप्रादेशमवाप्य गीष्पतिपुरो यातामिमां सोऽब्रवीत्
त्वामद्यापयिताऽस्मि धीमति! परां गान्धर्वविद्यामहम्।
मेधा तेऽनुपमा पिकालिविजयी कण्ठो यदा दृश्यते
नैवादृङ् मनुजेषु लब्ध-जनुषां नो किन्नरीणामपि॥९॥

भावानुवाद—बृहस्पतिके आदेशानुसार वह ब्राह्मण इस कलावलिको उनके समीप ले आया। तब बृहस्पति बोले—हे धीमति! (बुद्धिमति)

मैं तुम्हें सर्वोत्कृष्ट गन्धर्व-विद्याका अध्ययन कराऊँगा, क्योंकि तुम्हारी मेधा (स्मरण रखने और समझनेकी मानसिक शक्ति) अतुलनीय है तथा कण्ठ भी पिक अथवा कोयलकुलपर विजय प्राप्त करनेवाला है। अहो! ऐसी तीक्ष्ण मेधा तथा मधुर कण्ठ मनुष्य-लोकमें नहीं होते। अधिक क्या? किन्नरियों तक में भी कभी ऐसा देखा नहीं जाता॥९॥

अधाप्य मासमिह वर्षमपि स्वयं स्व-
र्नीतामपाठयदिमामियमाश्विनान्ते ।
प्राप्यावनीं मधुपुरीमगमद् व्रजे ह्यः
सायं तथाद्य तु तवाग्रतः आगताऽभूत्॥१०॥

भावानुवाद—बृहस्पतिने एक महीने तक मधुपुरीमें रहकर इसे सङ्गीतकी शिक्षा प्रदान की है तथा उसके बाद स्वर्गमें ले जाकर इसे एक वर्ष तक पढ़ाया है। ये आश्विन मासके अन्तमें पृथ्वीपर उतरकर कल ही मथुरामें पहुँची है और आज सायंकाल व्रजमें तुम्हारे समीप आयी है॥१०॥

तद् गीयतां किमपि भाविनि कं नु रागं
गायानि मालवहिम प्रणय प्रदोषे।
कम्बा स्वरं सुमुखि! षड्जमथ श्रुतिम्बा
कां तस्य वच्मि चतसृष्विति चादिश त्वम्॥११॥

भावानुवाद—कुन्दलताकी सारी बात सुनकर श्रीराधाने कहा—हे भाविनि (सुन्दर स्त्री)! तुम कुछ गाकर मुझे सुनाओ।

कलावलिने पूछा—हे वृन्दावनेश्वरि! किस रागमें गान करूँ?

श्रीराधा—प्रदोषका समय है, अतः मालव रागका गान करो।

कलावलिने पुनः पूछा—हे सुमुखि! किस स्वरसे गाऊँ?

श्रीराधा—षड्जमें।

कलावलि—हे राधे! इसकी चार श्रुतियाँ हैं, उनमेंसे कौन-सी श्रुतिके अनुसार गाऊँ? इसका भी आदेश करो॥११॥

कण्ठे श्रुतिर्न तव वात–कफादिदोषा–
शुद्धा भविष्यति कदापि विनैव वीणाम्।
तद्रागताल गमक–स्वर–जाति–तान–
ग्रामश्रिया मधुरमातनु गीतमेकम्॥१२॥

भावानुवाद—तब श्रीराधा बोली—हे सुन्दरि! जिस प्रकार कण्ठमें वात, कफ आदि दोष रहनेसे गान करना कभी सम्भव नहीं होता, ठीक उसी प्रकार वीणाकी सहायताके बिना शुद्धा श्रुतिका गान करना भी सम्भव नहीं है। अतएव राग, ताल, गमक, स्वर, जाति, तान, ग्राम इत्यादिके साथ एक मधुर गान सुनाओ॥१२॥

राधे! विनैव भवतीमिह गानविद्यां
जानन्ति काः कलयताऽमिलिताः श्रुती स्ताः।
प्रोच्येत्थमातनुत केक्यलिवृन्दनिन्दि–
ताना नना तनन रीति सुरीति–गानम्॥१३॥

भावानुवाद—कलावलिने कहा—हे राधे! तुम्हारे बिना इस जगतमें गान–विद्याको कौन जान सकता है? अतएव, अमिश्रित श्रुतिमें ही गान करती हूँ, श्रवण करो।

यह कहकर कलावलि—"ता ना न ना त न न ऋ" इत्यादि सुरसे मयूर अथवा भ्रमरको भी विनिन्दित करनेवाले कण्ठस्वरसे अति सुन्दर गान करने लगी॥१३॥

आदौ प्रियालि–वितत्तेर्नयनाश्रु–नद्यः
सस्त्रुस्ततः स्थगिततां ययुरेव मध्ये।
अन्त्यक्षणे तु करकोपलतामवाप्य
पेतुष्ठनट्ठनदिति क्षिति–पृष्ठ एव॥१४॥

भावानुवाद—इस मधुर गानकी रीतिके श्रवणसे प्रथमतः प्रिय सखियोंके नयनोंसे अश्रु निःसृत होकर नदीके प्रवाहके समान बहने लगे। गानके मध्य–समयमें अश्रुका गिरना स्थगित हो गया तथा अन्तिम समयमें अश्रु कठोर अथवा शिला होकर आँखोंसे ठन–ठन शब्द करते हुए धरतीपर गिरने लगे॥१४॥

तस्याः कठोरतर–मानजुषस्तु चित्त–
हीरोपलं द्रवमवाप यदैव सद्यः।
साश्चर्य माख्यदयि हस्त! कलावले त्वद्–
गानं सुधां सुरपुरस्य तिरस्करोति॥१५॥

भावानुवाद—उस मानवती श्रीराधाका मानयुक्त चित्त–रूप अति कठोर हीरेका खण्ड भी द्रवीभूत हो गया। इसीलिए श्रीराधाने उस समय आश्चर्यचकित होकर कहा—हे देवि! कलावले! तुम्हारा यह गान देवलोककी सुधाका भी तिरस्कार करनेवाला है॥१५॥

त्वादृग जनो यदि ममास्तिक एव तिष्ठेद्
भाग्याज्जनुस्तदखिलं सफली करोमि।
नन्दात्मजो यदि पुनः श्रृणुयाद् गुणन्ते
कण्ठाद् बहिर्नहि करोति तदा कदापि॥१६॥

भावानुवाद—यदि तुम्हारे समान गुणवती नारी मेरे भाग्यवशतः मेरे निकट ही रहे, तब मैं अपना सम्पूर्ण जीवन सफल कर सकूँगी। देखो, हे देवि! नन्दनन्दन यदि तुम्हारे इन गुणों अथवा गान–विद्याको श्रवण करेंगे, तब वे कभी भी तुम्हें कण्ठसे बाहर नहीं करेंगे, अर्थात् कण्ठहार बनाकर सर्वदा तुम्हें धारण करेंगे॥१६॥

अव्रुत कुन्दलतिका न वदैतदेतां
साध्वीं त्वमेव निजकण्ठतटीं नयैनाम्।
नैवान्यथा कुरु ततस्तु परार्द्ध निष्कं
दित्सुः सुखेन परिरब्धू मियेष राधा॥१७॥

कर्णे ललाग ललिताऽथ विमृश्य सुभ्रू
रूचे ब्रवीषि वरवर्णिनि सत्यमेतत्।
सन्माननं समुचितं नहि निष्क–दानात्
स्यात्तेन सर्ववसनाभरणानि दास्ये॥१८॥

भावानुवाद—यह सुनकर कुन्दलताने कहा—हे राधे! परम साध्वी कलावलिसे ऐसी अनुचित बात मत कहो। तुम स्वयं ही इसे कण्ठसे

लगा लो अन्य कोई बात मत करो। अनन्तर श्रीराधा उसे पुरस्कारमें अनमोल हार प्रदान करके आलिङ्गन करनेके लिए जैसे ही आगे बढ़ीं, तभी ललिताने श्रीराधाके कानमें एक गोपनीय बात बतलायी—हे राधे! तुम किसे आलिङ्गन करने जा रही हो? ये तुम्हारे वही धूर्त्त शठ नागर रमणीवेशमें आये हैं।

यह सुनकर श्रीराधाने कहा—हे सखी ललिते! हे उत्तम परामर्श देनेवाली! तुमने भलीभाँति विचारकर सत्य ही कहा है, केवल पदक देनेसे ही इनका समुचित सम्मान करना नहीं होगा, इन्हें सभी प्रकारके वस्त्र और अलङ्कार भी प्रदान करूँगी॥१७-१८॥

तद् रूपमञ्जरि! मदग्रत एव यूयं
चित्राम्बराणि परिधापयत प्रयत्नैः।
उद्घाट्य सम्प्रति पुरातन-कञ्चुकं
द्राङ्नव्यं समर्पयत तुङ्ग-कुचद्वयेऽस्याः॥१९॥

भावानुवाद—तत्पश्चात् श्रीराधा रूपमञ्जरीसे बोली—हे रूपमञ्जरि! मेरे सम्मुख ही तुम इसे यत्नपूर्वक चित्र-विचित्र वस्त्रादि पहना दो तथा पुरानी कञ्चुलिकाको खोलकर इसके तुङ्ग कुच-युगलपर शीघ्र ही नवीन कञ्चुलिका पहना दो॥१९॥

कौन्द्यब्रवीत् सुमुखि! नोद्घटयाङ्गमस्याः
सङ्कोचमाप्स्यति परं भवदग्र एषा।
तद्देहि यद् यदयि दित्ससि सर्वमेतद्
गत्वा स्वधाम परिधास्यति न त्विहैव॥२०॥

भावानुवाद—कुन्दलताने कहा—हे सुमुखि राधे! इसके अङ्गोंसे वस्त्रोंको मत उतरवाओ, इससे यह नवीन सुन्दरी तुम्हारे सामने अत्यधिक लज्जित हो जायेगी। अतएव तुम इसे जो कुछ प्रदान करनेकी इच्छा करती हो, इसे प्रदान कर दो। यह अपने घरमें जाकर पहन लेगी, किन्तु इस स्थानपर नहीं पहनेगी॥२०॥

न स्त्रीसदस्यपि भियं कुरुते ह्रियञ्च
स्त्रीति प्रसिद्धिरधिका सखि! सर्वदेशे।

आनन्द–वर्त्मनि कथं न यियाससि त्वं
सङ्कोच–कण्टकमिहार्पयसि स्वयं किम्॥२१॥

भावानुवाद—श्रीराधाने कहा—सखि कलावले! स्त्री-सभामें स्त्री जाति कभी भी भय अथवा लज्जा नहीं करती—यह बात तो सर्वत्र बहुत ही प्रसिद्ध है। बोलो तो, क्या तुम आनन्दके इस विषयमें स्वयं ही संकोचरूप कण्टक अर्पण नहीं कर रही हो?॥२१॥

राधे! न माल्य–वसनाभरणादि किञ्चि–
दङ्गीकरोमि किमु गायक कन्यकाहम्?
त्वञ्चेत् प्रसीदसि सकृत् परिरम्भमेकं
देह्येहि मां न धनगृध्नु मवेहि मुग्धे॥२२॥

भावानुवाद—कलावलि बोली—हे राधे! मैं माला, वस्त्र तथा आभूषण कुछ भी नहीं लूँगी। हे मुग्धे! क्या मैं कोई गायक-कन्या हूँ? तुम यदि मेरे प्रति प्रसन्न हो तो एकबार मात्र मुझे एक आलिङ्गन दान करो—आओ, मेरे समीप आओ, मुझे धन-सम्पत्तिका लोभी मत समझो॥२२॥

वाम्यं किमत्र कुरुषे परिधेहि साधु
नोचेद् बलादपि वयं परिधापयामः।
एका त्वमत्र शतशो वयमित्यतस्ते
स्वातन्त्र्यमस्तु कथमित्यवधेहि मुग्धे॥२३॥

भावानुवाद—श्रीराधिकाने कहा—हे सखि! क्यों वाम्यता दिखा रही हो अर्थात् मेरी बातका क्यों निषेध कर रही हो, अच्छी प्रकारसे वस्त्र-भूषण पहनो। यदि तुम इससे असहमत होओगी, तो मैं बलपूर्वक तुम्हें पहनाऊँगी। देखो, तुम अकेली हो और मेरे साथ सैंकड़ों सखियाँ हैं, अतएव हे मुग्धे! मेरे सामने तुम्हारी स्वतन्त्रता नहीं चलेगी। मैं कहती हूँ—अब भी सावधान हो जाओ॥२३॥

द्वे स्कन्धयोर्दधतुरञ्चल मग्रतोऽस्याः
पृष्ठे व्यमोचयत कञ्चुकबन्धमेका।

वक्षःस्थलादपततां सुबृहत् कदम्ब–
पुष्पे तदा सपदि कर्त्तितकिञ्चिदंशे॥२४॥

भावानुवाद—कलावलिको यह बात कहते ही श्रीराधाने सखियोंसे कलावलिको कञ्चुलिका पहनानेकी आज्ञा दी। तब दो सखियोंने उसके सम्मुख खड़ी होकर उसके कन्धेके दोनों ओरसे अञ्चल पकड़ लिया तथा एक सखीने पीछेके भागसे कञ्चुलिकाके बन्धनको खोल दिया—तभी वक्षःस्थलसे बड़े-बड़े दो कदम्बके फूल भूमिपर गिर पड़े। ये दोनों पुष्प एक तरफसे कुछ-कुछ कटे हुए थे॥२४॥

किं हन्त किं पतितमेतदयीति पृष्टा
दास्योऽखिला जहसुरेव सहस्त–तालम्।
लब्धावगुण्ठनपटी यदि जिह्रति स्म
पृष्ठीचकार तमथो वृषभानुपुत्री॥२५॥

भावानुवाद—श्रीराधाजीने पूछा—हाय! हाय! यह क्या गिरा? यह प्रश्न सुनकर रूपमञ्जरी आदि समस्त दासियोंने हाथसे ताली बजाकर हँसते हुए लज्जासे अञ्चलके द्वारा अपने-अपने मुखचन्द्रको ढक लिया। वृषभानुनन्दिनी श्रीराधा भी विमुखी होकर अर्थात् श्रीकृष्णकी तरफ पीठ करके बैठ गयीं॥२५॥

आलीकुलस्य सुदुरावर एव वक्त्रे
वस्त्रावृतोऽप्यजनि सस्वन एव हासः।
राधाप्यधान्निभृतमस्वनमेव हास्यं
कृष्णश्च कुन्दलतिका च जहास पश्चात्॥२६॥

भावानुवाद—तदनन्तर श्रीकृष्णकी ऐसी क्रियाको देखकर सखियाँ हास्यको रोकनेके लिए अपने-अपने मुखको वस्त्र द्वारा ढक लेनेपर भी जोरसे हँसने लगीं। श्रीराधा भी अकेली बिना कोई शब्द किये हँसने लगी, तत्पश्चात् श्रीकृष्ण तथा कुन्दलता भी हँसने लगे॥२६॥

मूर्त्तो हास्यरसो मूहूर्त्तमभवत् स्वाद्यस्ततः प्रोचिरे
सख्यो हन्त! बृहत् कदम्बकुसुमे धन्ये युवां भूतले।

धूर्त्त प्रापित-कैतवे अपि पुनर्निष्कैतवे अन्ततो
भूत्वा हास्यरसामृताब्धिमनु ये सर्वा निधत्तः स्म नः॥२७॥

भावानुवाद—तब उस स्थानपर मुहूर्त्त कालके लिए हास्यरस मानो मूर्त्तिमान होकर परम आस्वादनीय हो गया। अनन्तर सखियोंने दोनों कदम्ब-पुष्पोंको सम्बोधित करके कहा—हे बृहत् (बड़े) कदम्ब कुसुम युगल! इस भूमण्डलपर तुम्हीं धन्य हो। तुम स्वभावतः कपटताशून्य होकर भी उस धूर्त्तके द्वारा कपटता युक्त हो गये थे, अर्थात् वृक्षके कुसुम होनेके कारण तुम तो धूर्त्तता नहीं जानते थे, किन्तु इस धूर्त्तके हाथमें पड़कर तुमने भी रमणीके कुच-युगलके रूपमें दिखलायी पड़कर पहले तो अपनी धृष्टता ही प्रकाशित की थी, किन्तु अन्तमें धूर्त्ततारहित होकर तुमने हम सबको हास्य-रसामृत समुद्रमें निमग्न कर दिया॥२७॥

भो भोः कुन्दलते! क्व ते सहचरी लज्जा न सा दृश्यते
पातालस्य तले ममज्ज सलिले सा कुन्दवल्या सह।
तुच्छायैव भवामि हन्त विगतच्छायात्र वः किं ब्रुवे
तद् युष्मद्-वदनेषु नृत्यतु गिरां देवी यथेष्टं मुहुः॥२८॥

भावानुवाद—तत्पश्चात् सखियोंने कुन्दलतासे कहा—हे कुन्दलते! तुम्हारी सहचरी लज्जा कहाँ चली गयी?

कुन्दलताने कहा—पातालके तलमें जलके बीच वह कुन्दलताके साथ डूब गयी है। तुमलोग अब उसे देख नहीं सकोगी। सखियोंने पूछा—यदि कुन्दलता अपनी सखी लज्जाके साथ डूबकर मर गयी है, तब तुम कौन हो?

कुन्दलताने कहा—अरी! मैं तो उसकी छायामात्र हूँ।

सखियोंने कहा—तब तुम विगत छाया या कान्तिहीन क्यों दीख रही है?

कुन्दलता—और क्या कहूँ? तुम लोगोंके मुखमें वाग्देवी पुनः-पुनः यथेष्ट नृत्य करें॥२८॥

प्रेमा गीष्पति-शिष्यया सह सदा सत्सङ्ग आजन्मतो
मिथ्या वाङ् नहि च जिह्वया परिचिता साध्वीःस्वधर्मं मुहुः।
अध्याप्यातनु कर्म कारयसि ते ख्यातिर्व्रजे भूयसी
नाद्याऽभूत्तव वाञ्छितं यदियती कापि व्यथा सह्यताम्॥२९॥

भावानुवाद—ललिताने कहा—हे कुन्दलते! बृहस्पतिकी शिष्याके साथ तुम्हारा प्रेम और सत्सङ्ग बचपनसे ही सर्वदा बढ़ रहा है। मिथ्या वाक्योंके साथ तो तुम्हारी जिह्वाका परिचय ही नहीं है। तुम साध्वी स्त्रियोंको स्वधर्म अध्ययन कराकर अतनुकर्म अथवा सुमहान कार्य, पक्षान्तरमें उनमें मदन-विकार कराती हो—तुम्हारी ऐसी प्रशंसा तो सारे व्रजमें बार-बार सुनी जाती है। आज तो तुम्हारी वाञ्छित अभिलाषा पूर्ण नहीं हुई, अतएव तुम्हें कठोर पीड़ा ही सहनी पड़ी॥२९॥

आनीता विविधप्रयत्न-रचिता विद्याऽतिदूराद् गुरो-
र्विक्रेतुं सुधिया त्वयाऽद्य रभसादालीसदस्यापणे।
विक्रीता नहि साभवत् पुनरहो हास्यास्पदीभूततां
प्राप्ता द्रागशुभक्षणः स हि यदायातं भवद्भ्यामिह॥३०॥

भावानुवाद—सखि कुन्दलते! तुम परम बुद्धिमती हो। आज तुम हमारी सखीसभारूप इस बाजारमें बड़ी दूरसे श्रीगुरु (अर्थात् श्रीकृष्ण) से प्राप्त और विविध प्रयत्नसे रचित विद्याको बेचनेके लिए बड़े दर्पके साथ आयी थी। परन्तु, हाय! हाय! तुम्हारी वह विद्या तो बिकी ही नहीं, अपितु तुम शीघ्र ही हास्यास्पद ही हुई हो। अहो! आज तुम क्या किसी अशुभ समयमें यहाँ आयीं थीं?॥३०॥

अत्रापणे द्रुतमिमां ललितेऽद्य विद्यां
विक्रीय वाञ्छितमहं यदि साधयिष्ये।
तत् कञ्चुकीं वितरसीह न चेद्ददामि
तुभ्यं स्वकञ्चुकमहं क्रियतां पणोऽयम्॥३१॥

भावानुवाद—श्रीकृष्णने कहा—हे ललिते! मैं इस सखीसभारूप बाजारमें शीघ्र ही इस विद्याका विक्रय करके अपनी वाञ्छाको पूर्ण कर सकता हूँ। अतः इस कञ्चुलिकाको मुझे दे दो, यदि नहीं दोगी, तो मैं इस कञ्चुलिकाको तुम्हें ही पहनाऊँगा॥३१॥

शुष्कं प्रसूनमयि कोरकतां न गच्छेत्
प्राणे गते न खलु चेष्टत एव देहः।
दम्भी कथं विदित-तत्त्व उपैति पूजां
स्वामिन्! मृषा प्रतिभया न मलं प्रयाहि॥३२॥

भावानुवाद—यह सुनकर ललिता बोली—अरे! शठेन्द्र! शुष्क कुसुम क्या कभी कली हो सकता है? प्राण त्याग देनेपर देह क्या कभी कोई कार्य कर सकती है? दाम्भिक व्यक्तिकी दाम्भिकता अवगत होनेपर क्या कोई उसकी पूजा करता है? हे स्वामिन्! मिथ्या प्रतिभाके द्वारा कलङ्ककी भागी मत होना॥३२॥

कृष्णः स्ववक्षसि पुन कुसुमद्वयं तद्
धृत्वा जगाम जटिला-गृहमेव सद्यः।
सोच्चैःस्वरं भुवि निपत्य तथा रुरोद
येनाकुलैव जटिला मुहुराप खेदम्॥३३॥

भावानुवाद—तदनन्तर श्रीकृष्ण गिरे हुए दोनों फूलोंको उठाकर अपनी छातीपर पुनः धारण करके उसी समय जटिलाके घर पहुँचे। वहाँ जाकर भूमिपर गिरकर इस प्रकार उच्च स्वरसे रोदन करने लगे कि जटिला बड़ी व्याकुल हो गयी और बार-बार दुःख प्रकट करती हुई पूछने लगी—॥३३॥

का त्वं, रोदिषि किं कुतोऽसि, किमभूत्ते विप्रियं पुत्रि तत्
सर्वं ब्रुहि विमृज्य लोचन जल-क्लिन्नं मुखाम्भोरुहम्।
हा हा हन्त भवामि भाग्यरहिता धिङ् मे जनुर्धिक् तनुं
धिङ् मां धिग् धिगिति प्रबृद्ध-दवथु प्रचेऽर्द्धमर्द्धं वचः॥३४॥

भावानुवाद—हे पुत्री! तुम कौन हो? तुम किसलिए रो रही हो? कहाँसे आ रही हो? क्या किसीने तुम्हारा अहित किया है? आँखोंके जलसे अभिषिक्त अपने मुख-कमलका मार्जन करके मुझे सारी बातें बतलाओ। तब कलावलि बोली—हे आर्ये! हाय! हाय! मैं बड़ी दुर्भागी हूँ! मेरे जन्मको धिक्कार है! मेरी देहको धिक्कार है! मुझे शत-शत धिक्कार है—यह बात वह टूटी-फूटी अस्पष्ट बोलीसे अत्यन्त काँपती हुई बोली॥३४॥

वासो मे वृषभानु-भूपनगरे श्रीकीर्त्तिदायाः स्वसुः
कन्याहं सह राधया सम सदा संप्रीतिराबाल्यतः।
आयाताऽस्मि चिरादहं निजगृहात्तां द्रष्टुमुत्कण्ठया
सा मां नैव विलोकते न वदति प्रेम्ना न चालिङ्गति॥३५॥

भावानुवाद—हे आर्ये! मेरा निवास महाराज वृषभानुके नगरमें है तथा मैं कीर्त्तिदाकी बहनकी बेटी हूँ। राधाके साथ बाल्य-कालसे ही मेरी अत्यन्त प्रीति है। मैं बहुत दिनोंके बाद अपने घरसे बड़ी उत्कण्ठित होकर उससे मिलनेके लिए आयी थी। किन्तु, राधाने मेरे प्रति दृष्टिपात भी नहीं किया अथवा प्रेमसहित एकबार भी आलिङ्गन नहीं किया॥३५॥

मां दृष्ट्वा स्मयते न नैव कुशल-प्रश्नं करोत्यादरात्
तत् प्राणैर्मम किं प्रयोजनमिमांस्तक्ष्याम्यतं त्वत्पुरः।
आर्ये! त्वं विमृशावधारय कदा को मेऽपराधोऽभवत्
तां त्वं पृच्छ मुहुः प्रदाय शपथं सा मे कथं कुप्यति॥३६॥

भावानुवाद—मुझे देखकर एकबार मृदु हास्य भी नहीं किया, अथवा आदरपूर्वक एकबार भी मेरा कुशल नहीं पूछा। इसलिए मुझे इन प्राणोंको धारण करनेकी क्या आवश्यकता है? मैं तुम्हारे सम्मुख ही इस शरीरका त्याग करती हूँ। हे आर्ये! तुम विचार करके देखो, क्या श्रीराधाके प्रति मेरा कभी भी कोई अपराध हुआ है? बार-बार शपथ देकर उससे पूछकर देखो—वह क्यों मेरे प्रति क्रोधित है?॥३६॥

वत्से! समाश्वसिहि कोऽपि न तेऽपराधो
गच्छामि सर्वमधुनैव समादधामि।
तं स्नेहयामि भवतीं परिरम्भयामि
संलापयामि रजनीं सह शाययामि॥३७॥

भावानुवाद—जटिला कलावलिकी ऐसी करुण आर्त्त (दुःखपूर्ण) वाणीको सुनकर बोली—हे पुत्री! तुम निर्भय और शान्त हो जाओ, तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं है। मैं अभी चलती हूँ और सब समाधान करती हूँ, मैं ऐसी व्यवस्था करूँगी जिससे राधा तुमसे स्नेह करे। तुम्हें राधा द्वारा आलिङ्गन करवाऊँगी, तुम्हारे साथ उसकी बातचीत करवाऊँगी और आज रातमें दोनोंको एक ही साथ शयन करवाऊँगी॥३७॥

इत्युक्त्वा सहसा स्नुषालयमगाद् दृष्ट्वालिपालीः पुरः
प्रावोचल्ललिते! किमीदृगभवद् वध्वाः स्वभावोऽधुना।
तस्यास्तातपुरादियं स्वभगिनीं तां द्रष्टुमुत्कण्ठयै
वागात् सा कथमत्र सप्रणयमाश्वेनां न सम्भाषते॥३८॥

भावानुवाद—यह कहकर जटिलाने सहसा अपनी पुत्रवधूके कक्षमें प्रवेश किया। सखियोंको वहीं देखकर उसने ललितासे कहा—ललिते! आज पुत्रवधूका यह कैसा विषम (विपरीत) स्वभाव हो गया? उसके पिताके नगरसे उसकी अपनी बहन अत्यन्त उत्कण्ठित होकर आयी है, किन्तु पुत्रवधू उसके साथ प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप क्यों नहीं करती?॥३८॥

पश्यैषा नयनाश्रुसिक्तसिचया खिन्नाऽस्मदन्त र्महा
कारुण्यं जनयत्यतः सुचरिते! साद्गुण्यपूर्णे स्नुषे।
एनां साधु परिष्वजस्व कुशलं पृच्छ प्रियं किञ्चन
ब्रूह्यस्या हृदयव्यथापसरतु प्रीणीहि मां प्रीणय॥३९॥

भावानुवाद—जटिलाने अब श्रीराधासे कहा—हे सुचरिते! हे सद्गुण पूर्णे! हे पुत्रवधो! देखो तो, आँसुओंसे इसके कपड़े भीग रहे हैं, इसको दुःखी होते देखकर मेरे अन्तःकरणमें महा करुणा उदित

हुई है। इसका अच्छी प्रकारसे आलिङ्गन करो, कुशल समाचार पूछो, कुछ प्रियवचन बोलो—जिससे इसके हृदयकी पीड़ा दूर हो। इसे पहलेके समान ही आनन्द प्रदान करो और मुझे भी सन्तुष्ट करो॥३९॥

आर्ये! याहि गृहं यथाऽऽदिशसि तत् कुर्वे सुखेनाधुना
शेष्वै तावति बालिका-जन-वृथा-वादे स्वयंमापत।
बालाल्यः सदृशोऽल्पबुद्धिवयसोऽभीक्षप्रसाक्रुध-स्तासु
त्वादृगपारबुद्धिरतुला प्रमाणिकी किं पतेत्॥४०॥

भावानुवाद—श्रीराधाने कहा—हे आर्ये! आप घर जाइये। आपके आदेशके अनुसार मैं कार्य कर रही हूँ। इस समय आप सुखपूर्वक शयन करें—बालिकाओंके वृथा वाद-विवादमें पड़ना आपको शोभा नहीं देता। बाल-सखियाँ सभी समान हैं—इनकी आयु जितनी अल्प है, बुद्धि भी उतनी ही अल्प है। क्षण-क्षणमें ये परस्पर वाद-विवाद करतीं हैं और फिर परस्पर प्रीति भी करती हैं। इसलिए इनके बीचमें आप जैसी अपार बुद्धिशील प्रमाणिकी (न्याय करनेवाली) का आगमन क्या युक्तियुक्त है?॥४०॥

उत्तिष्ठ मा वद परं मम मूधर्न एव
दत्तो मया शपथ श्माशु गले गृहाण।
आत्मस्वसारमनया सह भुङ्क्ष्व शेष्व
मा भिन्धि मे गुरुजनस्य निदेशमेतत्॥४१॥

भावानुवाद—जटिलाने कहा—हे पुत्रवधो! उठो और अब अधिक कोई बात मत कहना—मैं तुम्हें अपने सिरकी शपथ देती हूँ। शीघ्र ही अपनी बहनको गलेसे लगा लो, एकसाथ भोजन करो और शयन करो। मैं तो तुम्हारी गुरुजन हूँ, मेरी इस आज्ञाका उल्लंघन मत करना॥४१॥

आर्ये! सप्रौढ़ि मामादिशासि यदिततो वच्मि सत्यंयदेषा
प्रावोचत् कुन्दवल्लीं कटुतरमधिकं दुःसहं तेन कोपात्।

नास्याः वक्त्रं विलोके यदि पुनरधुना सेयमस्यां प्रसीदेत्
तर्ह्येवाहं प्रसन्ना दिशसि यदखिलं तत् करोम्येव बाढ़म्॥४२॥

भावानुवाद—यह सुनकर श्रीराधाने कहा—हे आर्ये (सास)! आप यदि मुझे गम्भीरतापूर्वक अथवा हठता (आग्रह) के साथ आदेश देती हो, तो मैं भी एक सत्य बात बतलाती हूँ। इस नारीने कुन्दलताको अत्यन्त कटु वचन कहे थे, इसीलिए रोषवश मैं इसका मुख भी नहीं देखूँगी। किन्तु अब यदि यह कुन्दलताको प्रसन्न कर ले, तो मैं भी प्रसन्न हो जाऊँगी तथा आप जैसा आदेश करेंगी, उसका अवश्य ही पालन करूँगी॥४२॥

आर्ये! वक्ति मृषा स्नुषा तव मामेषा कटु व्याहरन्
नाप्यस्यै कुपिताऽस्मि तां प्रति ततः प्रोवाच राधा स्फुटम्।
किं मिथ्या वदसीह कुप्यसि न चेदस्यै प्रसीदस्यलं
कण्ठग्राहमियं त्वयाद्य रभसादालिङ्ग्यतामग्रतः॥४३॥

भावानुवाद—कुन्दलता बोली—हे आर्ये! तुम्हारी पुत्रवधू झूठ बोल रही है। इसने मुझे कभी भी कटु वचन नहीं कहे हैं, मुझे इसके प्रति कोई रोष नहीं है।

तब श्रीराधा कुन्दलतासे स्पष्ट रूपसे बोली—तुम आर्याके सामने झूठ क्यों बोल रही हो? यदि इसके प्रति तुम्हारा कोई कोप नहीं है और तुम इसके प्रति अत्यन्त प्रसन्न हो, तो हम सबके सामने इसे आलिङ्गन करके दिखाओ॥४३॥

तूष्णीं स्थितां सपदि कुन्दलतां विलोक्य
प्राह स्म सप्रतिभमेव तदा मृगाक्षी।
आर्ये! परामृश चिरं कतराब्रवीन्नौ
मिथ्येति तां परिभवस्य विधेहि पात्रीम्॥४४॥

भावानुवाद—श्रीराधाकी यह बात सुनकर कुन्दलता चुप हो गयी। ऐसा देखकर मृगके समान नयनवाली श्रीराधाने उसी समय जटिलासे प्रतिभाके साथ कहा—हे आर्ये! आप ही विचार करें कि हम दोनोंमेंसे

कौन झूठ बोल रही है। जो झूठ बोल रही है, उसका तिरस्कार करें॥४४॥

एतां यदत्र न परिष्वजते सहर्षं
तत् कोपलिङ्गमिह कः खलु संशयः स्यात्।
वृद्धाऽवदन्मम वधुरिह वक्ति सत्य–
मन्तः प्रसीदति न कुन्दलता यदस्याम्!॥४५॥

भावानुवाद—जब कुन्दलताने इस रमणीका सहर्ष आलिङ्गन नहीं किया, तो यह उसके विशेष क्रोधका ही चिह्न है—अब इसमें क्या कोई और संशय है? तब वृद्धाने कहा—मेरी बहू सत्य ही कह रही है। हे कुन्दलते! इसका दोष क्षमा करके इसे प्रसन्न क्यों नहीं करती हो?॥४५॥

येन प्रसीदसि तदेव करोमि कौन्दि
मान्याऽस्मि तेऽद्य रचिताऽञ्जलि रस्मि तुभ्यम्।
वीक्ष्यैव मन्मुखमिमां परिरब्धुमेसि
नातः परं वद ह हा शपथो ममात्र॥४६॥

भावानुवाद—हे कुन्दलते! तुम जिससे प्रसन्न होओ मैं वही करती हूँ। देखो, मैं तुम्हारी पूजनीय हूँ, आज तुम्हारे सामने हाथ जोड़ती हूँ, मेरे मुखके प्रति दृष्टिपात करके इसका आलिङ्गन करो। तुम और कोई बात मत कहना। हाय! हाय! तुम्हें मेरे सिरकी शपथ है॥४६॥

आर्या ददाति शपथं न विभेष्यतोऽपि
का धीरियं तव तदेहि परिष्वजस्व।
इत्यालयश्च जटिला–कुटिले च धृत्वै–
वालिङ्गयन् बत मिथो हरिकुन्दवल्यौ॥४७॥

भावानुवाद—इसके बाद भी जब कुन्दलताने कोई चेष्टा नहीं की, तब सखियाँ बोलीं—हे कुन्दलते! क्या तुम्हें आर्याकी शपथका भय नहीं है? अहो! तुम्हारी कैसी बुद्धि है? अब इसे गले लगाकर आलिङ्गन करो। यह कहकर सारी सखियोंने तथा जटिला और

कुटिलाने मिलकर उसे पकड़कर श्रीहरिके साथ उसका आलिङ्गन करवाया॥४७॥

वृद्धा तदा किल न भेदभविष्यदारा–
दालीततेर्हसरसो न विराममैष्यत्।
ताश्चेलरुद्धवदनास्तदपि प्रहासं
निःशब्दमेव विदधुश्च दधुश्च मोदम्॥४८॥

भावानुवाद—उस समय वृद्धा जटिला यदि निकट न होती, तो सखियोंके हास्यरसका कभी भी विराम नहीं होता। तथापि अपने-अपने अञ्चलोंसे मुखको ढककर बिना किसी आवाजके वे हँसते-हँसते महानन्दमें डूब गयीं॥४८॥

वृद्धा वधूमथ जगाद निज स्वसारं
ब्रूहि प्रियं परिरभस्व च निर्विवादम्।
इत्यात्मपाणिविधृतौ द्रुतमेव राधा–
कृष्णौ मिथोऽतिपरिरम्भमवापयत्तौ॥४९॥

भावानुवाद—तदनन्तर वृद्धाने अपनी पुत्रवधूसे कहा—हे पुत्री! अब अपनी बहनके साथ प्रीतिपूर्वक वार्त्तालाप तथा आलिङ्गन करो—यह कहकर जटिलाने शीघ्र ही एक हाथसे श्रीकृष्णको और दूसरे हाथसे श्रीराधाको पकड़कर उन दोनोंको महा-आलिङ्गन-पाशमें आबद्ध करवा दिया॥४९॥

हर्षाश्रुबिन्दु निकरं नुदतं प्रतिस्व–
चेलेन भोः सुखयतञ्च मिथो भगिन्यौ।
सम्भुज्य किञ्चन सुखेन कृतैकतल्प–
स्वापे दृढ़प्रणयतो नयतं त्रियामाम्॥५०॥

भावानुवाद—तदनन्तर वृद्धाने उन दोनोंसे कहा—हे दोनों बहनो! इस समय परस्पर आलिङ्गनके आनन्दसे जो अश्रुरूप बिन्दु-राशिका वर्षण हो रहा है, उसे तुम दोनों एक-दूसरेके वस्त्राञ्चल द्वारा पोंछकर परस्पर सुखानुभव करो। तत्पश्चात् सुखके साथ किञ्चित् भोजन

करके एक ही शय्यापर शयनकर दृढ़ प्रीतिके साथ रात्रि व्यतीत करो॥५०॥

वृद्धा जगाम शयितुं निजगेहमारात्
कृष्णः प्रगल्भतरतां दधदाख्यदालीः।
विद्यां विगीततमतां गमितामपि द्राग्
विक्रीय वाञ्छितमविन्दमतो जिताःस्थ॥५१॥

भावानुवाद—यह कहकर वृद्धा कुछ दूर अपने घरमें शयन करनेके लिए चली गयी। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और अधिक प्रगल्भता (प्रत्युत्पन्न मति या निर्लज्जता) के साथ सखियोंसे बोले—देखो, हे सखियो! मेरी जो विद्या अत्यन्त निन्दनीय हो गयी थी, उसे शीघ्र विक्रयकर मैंने मनोवाञ्छित फल लाभ किया है। अतएव तुमलोग मुझसे पराजित हो गयी हो॥५१॥

भ्रातर्वधूर्यदिह भोः समभोजि तस्माद–
द्यैव वाञ्छितमलम्भि जयश्च भूयान्।
सेतुर्यदि त्रुटित एव तदार्द्धभुक्ता
नैवास्त्वियं भवतु पूर्णमनोरथैव॥५२॥

भावानुवाद—ललिताने कहा—हे नागरराज! भ्रातृ-वधू (भाभी) का उपभोग करके आज तुमने अभिलषित फल प्राप्त किया है और प्रचुर जयको भी प्राप्त किया है। जब मर्यादा भङ्ग हो ही गयी है, तब इन्हें और अर्द्ध-भुक्ता न रखकर पूर्णमनोरथवाली ही करो॥५२॥

भ्रात्रापि शुद्धमनसा भगिनी सुतापि
पित्राऽत्र किं न परिरभ्यत एव लोके।
युष्माकमानखशिखं स्मरभाव एव
तीव्रस्तदात्मसममेव जगच्च वेत्थ॥५३॥

भावानुवाद—कुन्दलताने कहा—हे ललिते! क्या शुद्ध चित्तसे भाई अपनी बहनका तथा शुद्ध हृदयसे पिता अपनी पुत्रीका आलिङ्गन नहीं करता? तुम्हारे तो पैरसे मस्तक तक सभी अङ्ग तीव्र अनङ्ग-भावसे

ही जर्जरित हो रहे हैं, इसलिए सारे संसारको अपने ही समान देखती हो॥५३॥

इत्युक्तवत्यतिरुषेव निवेद्य कुन्द–
वल्ली बहिर्भवनमेव यदाध्यतिष्ठत्।
तस्याः प्रसादन कृते निरगुश्च सख्य–
स्तत्रैक एव कुसुमेसुरपाद् युवानौ॥५४॥

भावानुवाद—यह कहकर मानो अति क्रोधमें भरकर कुन्दलता कक्षसे बाहर चली गयी। तत्पश्चात् उसे प्रसन्न करनेके लिए सखियाँ भी बाहर चली गयीं। उस स्थानपर केवल कुसुम–धनु कामदेव ही श्रीश्रीराधाकृष्ण युगलके रक्षा–कार्यमें प्रवृत्त हुए॥५४॥

सुभ्रूविभङ्ग कुटिलास्य सरोजसीधु
माद्यन्मधुव्रतविलास सुसौरभानि।
सम्प्राप्य जालविवरेषु जुघूर्नुरेव
प्रेष्ठालयः प्रतिपदं प्रमदोर्मिपुञ्जे॥५५॥

इति श्रीलविश्वनाथचक्रवर्ति विरचितः
श्रीश्रीचमत्कारचन्द्रिकाः सम्पूर्णः।

भावानुवाद—उस समय बाहर स्थित प्रिय सखियाँ श्रीराधाके भ्रू–भङ्गिसे युक्त कुटिल मुखकमलके मधुपानमें प्रमत्त मधुसूदन श्रीकृष्णके विलासादिकी सुन्दर सौरभ–राशिको प्राप्त करके खिड़कियोंके जाल–रन्ध्रों (छेदों) में नयन लगाकर प्रतिपदपर परमानन्दके समुद्रकी तरङ्गोंमें डूबने लगीं॥५५॥

इति श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा सम्पादित श्रीश्रीचमत्कारचन्द्रिकाका भावानुवाद समाप्त।